अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

मई, २०१२

दादाभाई केसरीलाल बोर्दिया की स्मृति में आयोजित

सम्मान-समारोह

❑

28 अप्रेल, 2012 को उदयपुर में विद्या भवन परिसर में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। यह समारोह दादाभाई केसरीलालजी बोर्दिया की स्मृति को समर्पित था।

आयोजन किया था जीवन रक्षक चेरिटेबिल ट्रस्ट, उदयपुर ने।

इस समारोह में गुजरात के भरूच जिले के झगड़िया ग्रामांचल में सम्पूर्ण समर्पण के साथ पिछले 30 सालों से कार्यरत डॉ. अनिलभाई देसाई व लता बेन देसाई का सम्मान किया गया। सम्मान स्वरूप उनको एक लाख पचास हजार रुपये की राशि भेंट की गयी और शॉल ओढ़ाकर उनकी सेवाओं के प्रति सम्मान व्यक्त किया गया। समारोह के अध्यक्ष थे बिहार उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री राजेश बालिया। समारोह के प्रारम्भ में ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री अनिल बोर्दिया ने सबका स्वागत किया और ट्रस्ट की सचिव डॉ. मंजुला बोर्दिया ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। विद्याभवन के अध्यक्ष रियाज तहशीन साहब ने दादाभाई के योगदान पर प्रकाश डाला। समारोह में उदयपुर के गणमान्य नागरिकों के अलावा कई शिक्षाविद् एवं विद्याभवन के पूर्व विद्यार्थी उपस्थित थे। समारोह में झगड़िया की संस्था **सेवा रूरल** के योगदान पर एक फिल्म भी प्रदर्शित की गयी। डॉ. अरुण बोर्दिया ने समारोह के अंत में सबके प्रति आभार व्यक्त किया। ❑

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ३७ अंक : ५
मई,२०१२
बैशाख-ज्येष्ठ वि.सं. २०६९

सम्पादक
रमेश थानवी

प्रबन्ध संपादक
प्रेम गुप्ता

प्रकाशन संपादक
दिलीप शर्मा

- एक प्रति पन्द्रह रुपए
- वार्षिक सहयोग राशि एक सौ पचास रुपए
- संस्थाओं के लिए दो सौ पचास रुपए
- व्यक्तिगत सदस्यों के तीन वर्ष का चार सौ रुपए
- संस्थाओं के लिए तीन वर्ष का छ: सौ रुपए
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि पन्द्रह सौ रुपए

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र
जयपुर-३०२ ००४
फोन -२७०७६९८, २७००५५९
फैक्स - ०१४१-२७०७४६४
ई मेल - raeajaipur@indiatimes.com
thanviramesh@gmail.com

क्रम
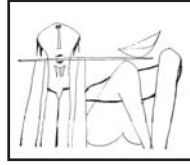
पाठक अब इंटरनेट पर अनौपचारिका नीचे लिखे लिंक पर ऑन लाइन पढ़ सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/April-2012

अनौपचारिका के पिछले अंक भी आप नीचे लिखे लिंक पर देख सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/March-2012

जयपुर से पी.डी.सिंह

अनौपचारिका के मार्च, २०१२ में 'अपनी बात' के अन्तर्गत अध्यापक की योग्यता के संदर्भ में आपने कई प्रश्न उठाये हैं।

यह सच है कि योग्य शिक्षकों का चयन हो भी जाये तो भी वे योग्य बने नहीं रह पाते। स्वयं की उदासीनता एवं प्रशासनिक स्तर पर प्रेरक व्यवस्था के अभाव में उनकी योग्यता को निरन्तर जंग ही लगती रहती है। कुछ तो उनका अपने **'कुटीर उद्योग'** में संलग्न रहना तथा घिसे पिटे पुराने नोट्स से ही पढ़ाने की प्रवृत्ति, नया कुछ सीखने पढ़ाने में अभिरूचि का न होना, स्वाध्याय प्रवृत्ति से रिश्ता नहीं रखना, प्रशासनिक लाल फीताशाही से त्रस्त होकर निराश रहना तथा प्रोत्साहन एवं प्रेरणा से वंचित रहना इत्यादि कारण तो हैं ही।

सेवारत सतत शिक्षण-परीक्षण के अभाव में शिक्षक जागरूक नहीं रह पाते और न ही योग्यता में अपडेट। यह भी सच है कि कुछ शिक्षक स्वत: ही छात्रों के विकास में रुचि रखते हैं और अपने छात्रों की आत्मछवि का उन्नयन कर उन्हें प्रेरित प्रोत्साहित करते हैं। शिक्षक की यह दिलचस्पी छात्रों को प्रभावित करती है और दिशाबोध देती है।

प्रशासनिक कुर्सियों पर जब शिक्षा के प्रति चेतनाहीन, अर्द्धशिक्षित या अशिक्षितवत् होते हैं तो फिर क्या उम्मीद की जा सकती है। गंगा को गंगोतरी पर तो निर्मल एवं सतत प्रवहमान होना ही है। योग्यता की सतत जांच तो हर क्षेत्र में ही आवश्यक है क्योंकि ज्ञान और तकनीक का विस्फोट तीव्र है और २१ वी सदी के स्मार्ट बच्चों को सही आधुनिकतम शिक्षा व संस्कार देना इतना सहज नहीं है किन्तु असाध्य कुछ भी नहीं है। आवश्यकता है चेतना-संपूरित कुशल प्रशासन की, आवश्यक व्यवस्था की, आवश्यक व्यवस्थाओं की पूर्ति की एवं सक्षम निरीक्षण, अत्प्रेरण व संलग्नता की।

अनौपचारिका में जो कुछ सामग्री होती है नूतनता एवं गहराई लिये होती है। इस अंक की भी रचनायें अपने अपने संदेश लिये हुये हैं। सपना महेश ने 'बिज्जी' पर लिखे अपने सूक्ष्म लेख में एक विराट प्रस्तुति दी है। एक विराट, विलक्षण व्यक्तित्व की जीवन्त एवं भावात्मक शैली में लिखा गया लेख मन को छू गया । मनमस्तिष्क श्रद्धा एवं गौरव से भर उठा। ❑

कान में बोलते पाठक

अनौपचारिका अप्रेल, २०१२ के अंक को पढ़ कर बहुत सारे पाठकों के फोन हमारे पास आये। ऐसी आत्मीयता से हमारा उत्साह तो बढ़ता ही है मगर मन में सबके प्रति कृतज्ञता भी जागती है। हम इस आत्मीयता के प्रति नतसिर हैं। ❑

इंतजार

❑

गौरव सोलंकी

सार्वजनिक स्थल पे बैठा भिखारी
हाथ में कटोरा लिए
बालों में लगी हुई सलवटें
चेहरे पर ऊंघती उबासियों की करवटें
चमड़ियों पे कसता तनाव
शरीर पे जमता गंदा जमाव
ऐड़ियों से होता लहू का रिसाव
आंखों में तैरती उदासी
बयां करती है उसके
गले की गुजारिश
जिसने कितने ही दिनों से
कुछ न खाया
उसे 'इंतजार' है
उन चंद रुपयों का
जो कितने ही दिनों से
उसकी झोली में न आया
चलते-फिरते लोगों के चेहरे
ताकता यह बेदर्द मुखड़ा
बयां करता है
सारे जहां की निर्दयता को
जिसने कितने ही दिनों से
उसे कुछ न खिलाया । ❑

कक्षा-१२ जवाहर नवोदय विद्यालय
कालंद्री (सिरोही)
मोबाइल नं. ८९६३८११५२५

एक शाला माता-पिताओं के लिए...

समाज में पाठशालाओं, स्कूलों अथवा शिक्षा की दूसरी दूकानों की कोई कमी नहीं है। छोटे से छोटे बच्चे को मां-बाप स्कूल भेजने की जल्दी करते हैं। दो-ढाई साल के बच्चे को भी स्कूल में बिठा कर आ जाने का आग्रह भी हर घर में बना हुआ है।

इसके विपरीत हर घर की दूसरी सच्चाई यह भी है कि कोई भी मां-बाप बालकों के बारे में, बालकों की सही शिक्षा के बारे में और साथ ही सच्चा एवं अच्छा माता-पिता अथवा अभिभावक होने का शिक्षण कहीं से भी प्राप्त नहीं करता। माता-पिता बनने से पहले किसी भी नौजवान जोड़े को यह नहीं सिखाया जाता है कि मां-बाप बनने का अर्थ क्या है ? इससे पहले किसी भी जोड़े को यह भी नहीं सिखाया जाता कि अच्छे और सच्चे दाम्पत्य की शुरुआत कैसे की जानी चाहिये ? पति-पत्नी होने का अर्थ क्या है ? यह भी कोई नहीं बताता। परिणाम साफ है कि जीवन शुरू होने से पहले ही घर टूटने-बिखरने लगते हैं। घर बसाने की शाला न आज तक कहीं खुली है और न खुलती दीखती है। समाज और सत्ता दोनों या तो इस संकट के प्रति सजग नहीं है या फिर इसे अनदेखा कर रहे हैं।

आज पहली जरूरत यह है कि हम नौजवान जोड़ों को पूरी आत्मीयता के साथ सच्चे दाम्पत्य की शुरुआत करना सिखायें। कोई ऐसी शाला खोलें जो उनको दाम्पत्य जीवन की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सच्चाई से अवगत कराये और उन्हें सच्चे सहजीवन का प्रशिक्षण दे । सहजीवन के लिये कितने प्रगाढ़ प्रेम की आवश्यकता है और कितनी सहिष्णुता एवं धैर्य की आवश्यकता है यह भी विस्तार से बताना जरूरी है। अच्छे घर कभी बिना त्याग और तप के नहीं बसते हैं यह सिखाना भी जरूरी है। घर गृहस्थी के अर्थ शास्त्र की जानकारी भी प्रारम्भ में ही दी जाये तो अच्छा है । यदि कोई जोड़ा सौभाग्य से संयुक्त परिवार में रहने का अवसर पाता है तो उसे अपने संयुक्त परिवार की इतिवृत्तात्मक जानकारी पा लेने के साथ-साथ उसमें रहने का सलीका भी सीख लेना चाहिये । जरूरत इस बात की है कि हम ऐसी शालाएं खोलें जहां सच्चे दाम्पत्य का शिक्षण पहले हो और बाद में अच्छे मां-बाप बनने का शिक्षण।

अच्छे माता-पिता बनने के लिये जरूरी है कि हम बालकों के लालन-पालन की सारी बारीकियों को समझें और उन पर आचरण करें। अभी कुछ वर्ष पहले हमने अनौपचारिका में माता-पिताओं के लिये लिखी गयी महात्मा भगवानदीन की किताब को क्रमशः प्रकाशित किया था। तब हमें पचासों मां-बापों ने कहा था कि इस किताब को तुरन्त प्रकाशित करके हर घर को उपलब्ध करवा दीजिये। जाहिर है कि वे तमाम माता-पिता अपनी अज्ञानता पर तरस खाते हुए ऐसी मांग कर रहे थे। असली तरस की बात तो यह है कि माता-पिताओं का आधा-अधूरा ज्ञान बालकों के जीवन पर सीधा अत्याचार है। वे अज्ञानवश शिशुओं, बालकों एवं किशोरों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं और इसका घातक असर बच्चों के जीवन पर पड़ता है।

जब कोई शाला मां-बापों के लिये खुलेगी तो आशा करनी चाहिये कि वह किशोर-किशोरियों एवं बालकों के मनोविज्ञान का जरूरी ज्ञान भी माता-पिताओं को दे सकेगी। अच्छा मां-बाप बनने के लिये आवश्यक पुस्तकों को पढ़ना भी सर्वथा अपेक्षित है। आज कितने लोग मां-बाप बनने से पहले उन पुस्तकों को पढ़ते हैं जिन्हें पढ़ने से उनकी समझ विकसित होती हो और उन्हें नयी दृष्टि मिलती हो।

पहले तो अपनी आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकों को पढ़ना जरूरी है और बाद में बालकों की आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकों का अध्ययन भी उतना ही आवश्यक है। क्या हमने कभी सुना है कि हिन्दी जगत में एक ऐसी पुस्तक भी उपलब्ध है जिसका नाम **मां-बापों की माथापच्ची** है। यह पुस्तक **गिजुभाई बधेका** ने लिखी थी। वे पेशे से वकील थे मगर अपनी इच्छा से उन्होंने बालकों की वकालत करने के लिये बाल-शिक्षण का काम बहुत चाव से अपना लिया था। बाल-शिक्षण उनका स्वधर्म बन गया था। उनका व्यसन बन गया था। बालकों के बीच रहकर के ही वे बाल-व्यवहार की सारी बारीकियों को समझते और सीखते रहते थे। गिजुभाई का अपना सारा अध्ययन बालकों के बीच हुआ था दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर में काम करते हुए।

क्या किसी अभिभावक को यह पता है कि रूस के एक बहुत बड़े शिक्षा शास्त्री **मकारेंको** ने एक किताब लिखी थी - **माता-पिताओं के लिये**। यह किताब अच्छा अभिभावक बनने का एक शास्त्र है, एक कुंजी है, एक मार्ग-निर्देशिका है। आज किसी घर में खोजें तो भी यह किताब नहीं मिलेगी। घर की बात छोड़ दें बी.एड. कॉलेज में या विश्वविद्यालय में शायद ही यह पुस्तक मिल सके।

रूस एक और शिक्षाशास्त्री थे उनका नाम था - **सुखोम्लीन्सकी**। उनकी एक क्रांतिकारी किताब है - **बाल हृदय की गहराईयां** । यह पुस्तक भी उन तमाम माता-पिताओं के लिये आवश्यक किताब है जो अपने बालकों की परवरिश पूरी सजगता के साथ करना चाहते हैं। हर घर की जरूरत है यह किताब मगर इसे रखने की चाहत कितने मां-बापों में है ? अगर कोई इस किताब को नौजवान माता-पिताओं तक पहुंचा सके तो समाज का बड़ा भला होगा। ऐसा हमारा पूरा विश्वास है ।

❑ **रमेश थानवी**

शिक्षा का सीधा सरोकार

❑

अमरनाथ भाई

अमरनाथ भाई सर्वोदयी परम्परा में शिक्षा को लोकोन्मुखी बनाने की दिशा में लगातार प्रयासरत हैं। वे जयप्रकाश नारायण और धीरेन्द्र मजूमदार के बाद उनके मार्ग पर चलने वाले एक समर्पित झंडाबरदार हैं। अमरनाथ भाई शिक्षा के साथ समाज परिवर्तन का सपना देखने वाले ऐसे कई गांधीवादी कार्यकर्ताओं में से एक हैं जिनको आज नयी राजनैतिक पौध ने दरकिनार कर दिया है। वे आज दिल्ली चले जायें तो उनको इजजत से बुलाकर पास बिठाने की गलती भी शायद हमारा मानव संसाधन विकास मंत्रालय नहीं करेगा। प्रस्तुत लेख में अमरनाथ भाई उन्हीं बुनियादी मूल्यों की याद दिला रहे हैं जिन मूल्यों को गांधीजी ने स्वयं बुनियादी शिक्षा में पिरोया था। वे उन प्रयोगों की भी याद दिला रहे हैं जिन्हें गांधीजी अपने जीवन में उतार कर यह सिद्ध कर चुके थे कि भावी भारत का मार्ग यही है। यह एक अलग दुर्भाग्य है कि हम आज रास्ता भटक गये हैं। ❑ सं.

जिस शिक्षा में समाज की समस्याओं का हल ढूंढा जाना चाहिए था, वह शिक्षा ही आज समाज के लिए समस्या बन गयी है। वर्तमान व्यवस्थागत संकट का समाधान है-आज की शिक्षा व्यवस्था का विकल्प खड़ा करना। शिक्षा व व्यवस्था दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। व्यवस्था निर्माण का माध्यम शिक्षा है। आज हम जैसी व्यवस्था चाहते हैं, शिक्षा भी उसके अनुरूप होनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा तो आज की कारपोरेटी नवसाम्राज्यवाद की आवश्यकता पूर्ति का साधन बन गयी है। यदि **सर्वे भवन्तु सुखिन:** समाज -निर्माण का लक्ष्य हो तो शिक्षा भी उसके अनुकूल होनी चाहिए। वर्तमान में प्रचलित शिक्षा में न तो जीवन है, न जीविका। **कम पढ़ा तो हल छोड़ा, ज्यादा पढ़ा तो गांव छोड़ा और अधिक पढ़ा तो देश छोड़ा।**

सबको मुक्ति दिलाने वाली शिक्षा आज स्वयं ही सरकार व बाजार की गुलाम बनकर इनके हित पोषण में लगी है। देश का हर आदमी सरकार के लिये मात्र एक वोटर और बाजार के लिये सिर्फ कन्ज्यूमर (उपभोक्ता) बन कर रह गया है। अत: राजनीति व व्यवसाय के चंगुल से शिक्षा की मुक्ति जरूरी है। शिक्षा में विषमता और समाज में समता की आकांक्षा तो **'बबूल बोकर आम खाने'** जैसी बात है। कांटा बोने वालों को फूल कभी नहीं मिलते हैं, यह एक शाश्वत सत्य है।

आज की शिक्षा, भारतीय संस्कृति, जीवन शैली, मूल्यों, परम्परा तथा मानवीय सरोकारों से विमुख कर पश्चिमी सभ्यता में डुबो देने वाली है। शायद इसीलिये आम आदमी से लेकर शिक्षाशास्त्रियों तक तथा चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक आये दिन शिक्षा को बदलने की बात करते रहे हैं।

लेकिन बदलेगा कौन ? यह पता नहीं। शिक्षा के संदर्भ में कोठारी आयोग से लेकर आचार्य राममूर्ति समिति तक की सिफारिशें मानव संसाधन विकास मंत्रालय की फाईलों में धूल फांक रही हैं। परिवर्तन के नाम पर विदेशी विश्वविद्यालयों को देश में आमंत्रित किया जा रहा है। पहली कक्षा से बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाई जा रही है और शिक्षा मंत्रालय देखते-देखते मानव संसाधन विकास मंत्रालय बन गया। मनुष्य आज एक जीता-जागता प्राणी नहीं हो कर आज, भौतिकता केन्द्रित भोगवादी-बाजार का संसाधन बन कर रह गया है । आजादी के पैसठ साल बाद भी देश में अंग्रेजी का आकर्षण, प्रतिष्ठा व वर्चस्व देख कर महात्मा जी का ६ फरवरी, १९१६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह के अवसर पर दिया गया वह व्याख्यान याद आता है जिसमें उन्होंने कहा था -**'इस विद्यापीठ के प्रागंण में अपने ही देशवासियों से एक विदेशी भाषा में बोलना पड़ रहा है, यह बड़ी अप्रतिष्ठा और शर्म की बात है।'**

वस्तुत: आजादी के बाद भी हम अंग्रेजों की बनाई व्यवस्था ही छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ चला रहे हैं। शिक्षा, न्याय, प्रशासन, उद्योग, जीवनशैली, विकास का मॉडल यहां तक की हमारे संविधान का आधार भी १९३५ में अंग्रेजों द्वारा बनाया गया संविधान ही है। हमारी सामुदायिक विकास योजनायें, पंचवर्षीय योजनायें और विशेष आर्थिक योजनायें अमरिका, रूस और चीन से आयातित हैं। देशज कुछ भी नहीं। आधुनिक शिक्षा तो मैकाले ने ब्रिटिश उपनिवेशको स्थापित करने के लिए बनाई थी। गुलाम देश की शिक्षा आजाद देश में एक दिन भी क्यों चलानी चाहिए थी ? १५ अगस्त, १९४७ को जैसे यूनियन जैक की जगह राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज फहराया था वैसे ही शिक्षा भी उसी दिन बदलनी चाहिए थी। वस्तुत: शिक्षा सरकार मुक्त होकर पूर्णतया स्वतंत्र होनी चाहिए। अमूमन स्वायतत्ता की बात की जाती है मगर वह भी निरा फरेब है।

साक्षरता शिक्षा नहीं है। डिग्री नौकरी का लाइसेंस है, गुण विकास व समझदारी की नहीं। समझदारी बनने पर जिम्मेदारी का भान होता है और तभी परिवार, समाज, राष्ट्र में भागीदारी होती है। शिक्षा वह है जो मनुष्य बनाए, उसके चित्त से पशुत्व का भाव निकालकर मानवता विकसित करे, मानव के मस्तिष्क हृदय व शरीर का समुचित संतुलित विकास करे तथा स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति व परमात्मा के प्रति कर्तव्य परायणता बनाये।

आजादी की लड़ाई के साथ-देश के निर्माण विकास का देशज मॉडल तैयार करने का प्रयास गांधीजी ने किया था और उनके आश्रम में, उसके प्रयोग भी होते रहे। रचनात्मक कार्यक्रम, एकादश व्रत, सत्याग्रह, उद्योग, खेती, गोपालन आदि के अलावा उन्होंने शिक्षा का स्वरूप भी बनाया था। जिसे नई तालीम या बुनियादी शिक्षा कहा जाता है। पश्चिमी सभ्यता आधारित जीवनशैली व विकास मॉडल की आलोचना के साथ-साथ वैकल्पिक समाज रचना की रूपरेखा भी गांधीजी ने १९०९ में लिखी अपनी पुस्तक **'हिन्द स्वराज'** में प्रस्तुत की थी।

आजादी के बाद उसी कल्पना के अनुसार एक नयी समाज रचना का लक्ष्य नयी तालीम के माध्यम से पूरा करने का उनका प्रयास था। इस संदर्भ में दिशाबोध के कुछ बुनियादी बिन्दु हो सकते हैं-सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, श्रम-स्वदेशी, सादगी-स्वावलम्बन, परस्परावलम्बन, साध्य-साधन, विवेक, जाति धर्म पंथ आदि भेदभावों से मुक्त निरूपाधिक मानव की प्रतिष्ठा अन्त्योदय, विकेन्दीयकरण आदि। गांधी ने सागर-वृत्ति के जैसे (ओसेनिक सर्किल) मनुष्य को केन्द्र में रखकर **वसुधैव कुटुम्बकम** की कल्पना की है। दुर्भाग्यवश **हिन्द स्वराज्य** की अवधारणा गांधी के साथियों को मान्य नहीं थी। भारत में यह प्रयोग हुआ होता तो आज भारत का चित्र, चरित्र और चेहरा तो बदलता ही साथ ही आर्थिक मंदी व पर्यावरणीय संकट से जूझती दुनिया को भी अपने अस्तित्व रक्षा के लिए एक दिशा मिलती है।

साक्षरता शिक्षा नहीं है। डिग्री नौकरी का लाइसेंस है, गुण-विकास व समझदारी का नहीं है। समझदारी बनने पर जिम्मेदारी का भान होता है और तभी परिवार, समाज, राष्ट्र में भागीदारी होती है। शिक्षा वह है जो मनुष्य बनाए, उसके चित्त से पशुत्व का भाव निकालकर मानवता विकसित करे, मानव के मस्तिष्क हृदय व शरीर का समुचित संतुलित विकास करे तथा स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति व परमात्मा के प्रति कर्तव्य परायण बनाये। मानवीय मूल्य, सही मानसिकता व जीवन में स्वस्थ संबंध

विकसित कर सके। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, नैतिक, आध्यात्मिक पहलुओं की सह समझ पैदा कर सके। समता-न्याय आधारित नव-समाज-रचना में भूमिका निभाए। मानव के विकास क्रम में प्रिय, हित, लाभ से आगे न्याय, धर्म, सत्य तक पहुंचने की प्रक्रिया शैक्षणिक ही होगी।

आचार्य राममूर्ति ने अपनी पुस्तक **'शिक्षा समाज और संस्कृति'** में नयी तालीम की व्याख्या करते हुए लिखा है - नयी तालीम के तीन बुनियादी पहलू हैं - **ज्ञान प्राप्ति (समवाय), जीवन पद्धति-(स्वावलम्बन) एवं समाज परिवर्तन-(अहिंसा)।**

आणविक अस्त्रों ने हिंसा को कालबाह्य कर दिया है, अत: आवश्यक है कि जीवन शैली संघर्ष मुक्त हो। उसके लिये स्वदेशी, स्वावलम्बन-परस्परावलम्बन, पड़ोसीपन आधारित समाज बनाना होगा। खेती, उद्योग, समाज, प्रकृति के रूप में शिक्षण गर्भ से मृत्यु तक का होगा। वर्तमान संकट से मुक्ति के लिए शिक्षा के माध्यम से नये समाज की रचना करनी होगी जिससे संबंध-लोकतांत्रिक, साधन-वैज्ञानिक, पद्धति-शैक्षणिक तथा मूल्य-मानवीय होगा।

प्रत्येक गांव के सामूहिक पुरुषार्थ को रचनात्मक दिशा में जागृत करना राष्ट्रीय शिक्षा का लक्ष्य होगा। इस प्रकार की शिक्षा से नया मानव और समाज बनेगा। ❑
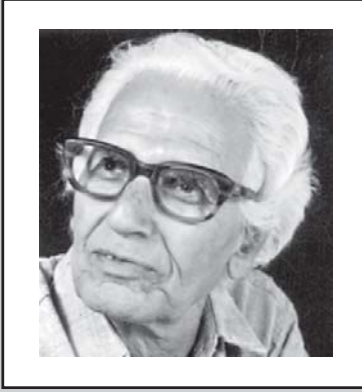
उजड़ी बस्ती का गीत

❑

नंद चतुर्वेदी

यह बस्ती उजड़ी-उजड़ी-सी
किसके घर आंगन जा बैठें
किससे हँस बोलें बतियायें
किससे कहें कभी तो हमको
मोती चुगते हंस बतायें
अपने गांव गयी पगडंडी
लगती है उखड़ी उखड़ी सी

कितने हाथ कुए का पानी
कितने ट्रक भर कोका-कोला
कितनी भांग घुटी शिव मंदिर
बोल बोल कर जय बम भोला
पानी खींच-खींच कर दुलहिन
रही एक पतली लकड़ी-सी

सूखे वृक्ष रसीले मन के
आयी नहीं मेघ मालायें
सूने तट जुमना पर बैठीं
वे प्यासी ब्रज की बालायें
कभी-कभी मिल कर गाती हैं
वे मल्हार टूटी बिगड़ी सी
यह बस्ती उजड़ी-उजड़ी-सी ❑

३०, अहिंसा पुरी, उदयपुर

आओ, सरकारी स्कूलों का मान बढ़ायें

❑

राहुल राजेश

पिछले दिनों श्रीश्री रविशंकर महाराज जयपुर पधारे थे। अपने व्याख्यान में किसी भावप्रवाह में यहां तक कह गये कि -सरकारी स्कूलें नक्सलवादी पैदा करती हैं और आतंकवादी पैदा करती हैं। उनकी मंशा सचमुच शायद सरकारी स्कूलों को गाली निकालने की नहीं थी मगर फिर भी वे चूंकि एक प्राइवेट शिक्षा संस्थान में बोल रहे थे इसलिये उनकी बात सीधी आक्रामक बन गयी। सरकारी स्कूलों के अध्यापकों ने विरोध भी जताया, संत शिरोमणी ने सफाई भी दी मगर जो बात उभर कर आयी वह यह है कि हमें सरकारी स्कूलों का मान बढ़ाना है, उनकी प्रतिष्ठा और इज्जत बढ़ानी है। आज आवश्यकता यह है कि हम हर सरकारी स्कूल को ऐसा प्यार भरा सम्बल दें, सहयोग दें कि वहां के अध्यापक भी आलोकित हो जायें और बच्चे भी आनन्दित हो जायें। भाई राहुल राजेश इसी दिशा में कुछ सार्थक संकेत कर रहे हैं। ❑ सं.

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, २००९ की संवैधानिक वैधता पर १२ अप्रेल, २०१२ को सर्वोच्च न्यायालय ने मुहर लगाकर यह बात तो साफ कर दी है कि अब सरकार शिक्षा के अधिकार को जमीन पर उतारने की जिम्मेदारी से नहीं बच सकती। सर्वोच्च न्यायालय ने जो फैसला दिया है, उसके अनुसार, निजी संभ्रांत स्कूलों में भी आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े तबकों के छह से चौदह वर्ष तक के बच्चों को भी पच्चीस फीसद सीटें देनी होंगी। इस निर्णय से मालदार-मलाईदार निजी और तथाकथित 'स्कूलों' के पैसा-कमाऊ प्रबंधन-तंत्रों में एक साम्राज्यवादी रोष और विरोध पैदा हो गया है। उन्हें ऐसा लग रहा है कि उनके मुनाफे में इस फैसले ने नाजायज बट्टा लगा दिया है। उन्हें अब यह भी लगने लगा है कि उनके 'एलिट' होने-कहलाने की बद्गुमानी पर भी बट्टा लग जायेगा। लेकिन वे अपने विरोध को थोड़ा पेशेवर अंदाज में जता रहे हैं कि वे 'चैरिटी' के लिए स्कूल नहीं चलाते ! कोई उनसे कहे कि जो विद्या-दान करे, वही 'चैरिटी' कर सकता है। आप तो बिजनेस करते हैं। आप भला चैरिटी कैसे कर सकते हैं ?

गौर करें तो चैरिटी का शोर मचाकर ये बड़े-बड़े, भारी-भरकम निजी स्कूल जनता को भरमा ही रहे हैं क्योंकि आरक्षित २५ प्रतिशत सीटों पर पढ़ने वाले बच्चों का ६५ प्रतिशत खर्च केन्द्रीय सरकार वहन करेगी और ३५ प्रतिशत खर्च राज्य सरकारें वहन करेंगी। फिर निजी स्कूलों को किस लिहाज से चैरिटी करना पड़ रहा है ? दरअसल, वे अपने लाभ-हानि के हिसाब से अपने 'छवि' के बारे में ज्यादा चिंतित हो गये हैं। उन्हें लग रहा है, अब भोज में ब्राह्मणों के साथ पंगत में दलित भी बैठने लगेंगे। कुल मिलाकर, वे अमीरी-गरीबी, ऊंच-नीच,

बड़े-छोटे और योग्य-अयोग्य की हिंसक दरार को पाटने के पक्ष में हैं ही नहीं। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के पीछे मंशा यही है कि शिक्षा के क्षेत्र में यह जो समर्थ-असमर्थ का विभाजन है, उसे धीरे-धीरे मिटाया जाये। अन्यथा, सर्वोच्च न्यायालय को भी इसका बिल्कुल साफ-साफ अंदाजा जरूर होगा कि देश के सभी निजी स्कूलों में गरीब बच्चों के लिए २५ प्रतिशत आरक्षण से पूरे देश के गरीब बच्चों को शिक्षा हासिल नहीं होने वाली है। सर्वोच्च न्यायालय के संकेत साफ हैं। पहला, इन निजी स्कूलों को शिक्षा के नाम पर अनाप-शनाप और मनमानी कमाई और कारगुजारी करने से रोका जाये तथा इन पर संवैधानिक लगाम लगायी जाये। दूसरा, सरकार शिक्षा-व्यवस्था के मौजूदा तंत्र को दुरुस्त करे और सरकारी स्कूलों को बच्चों के लिए पढ़ने लायक बनाये।

लेकिन मीडिया और अखबारों में सर्वोच्च न्यायालय के इस ऐतिहासिक निर्णय को लेकर जिस तरह और जिन बिन्दुओं पर गरमागरम चर्चायें और बहस चल रही हैं, उनसे मुझे ऐसा लग रहा कि सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के पीछे के संकेतों को न तो सरकार ठीक से समझ रही है और न ही मीडिया इन संकेतों पर ध्यान केन्द्रीत कर रही है। सरकार को ऐसा लगता है कि निजी स्कूलों में २५ प्रतिशत सीटें आरक्षित हो जाने से गरीब बच्चों की शिक्षा सुनिश्चित करने के उनके अनिवार्य दायित्व की इतिश्री हो गयी। मीडिया को भी लगता है कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के एलिट निजी स्कूलों में २५ प्रतिशत गरीब बच्चे पढ़ने लगेंगे तो देश की शिक्षा-व्यवस्था की तस्वीर बदल जायेगी। अगर मान भी लिया जाये कि देश के सभी निजी स्कूलों में २५ प्रतिशत सीटों पर गरीब बच्चों को पढ़ना अमली तौर पर संभव भी हो जाये तो बाकी बचे बच्चों को कहां और कैसे पढ़ाया जायेगा ? मेरा सवाल है कि शेष बच्चों के लिये सरकार कौन-सी सख्त और पक्की व्यवस्था करेगी ? एक सामान्य अनुमान से १८ करोड़ स्कूल जाने योग्य बच्चों के लिये क्या पर्याप्त स्कूल और पर्याप्त शिक्षक हैं ? सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय पर सरकारी वाहवाही का और निजी स्कूलों के हायतौबा का इतना ज्यादा शोर मच रहा है कि बच्चों की शिक्षा से जुड़ी असली समस्याओं/मुद्दों पर कोई ऊंगली ही नहीं रख रहा है।

निजी स्कूलों के बारे में दो बातों पर गौर करने पर समस्याओं की तस्वीर बिल्कुल साफ हो जायेगी। पहली बात तो यह कि देश में सरकारी स्कूलों की तुलना में, निजी स्कूलों की संख्या और पहुंच क्या इतनी पर्याप्त और सुलभ है कि गांव-गांव के सभी गरीब बच्चों की आबादी में से एक छोटा-सा हिस्सा भी इन निजी स्कूलों में अपनी सीट पा सकेगा ? यह तो कहने की जरूरत नहीं कि नामी-गिरामी बड़े-बड़े निजी स्कूलों का तामझाम केवल शहरों और महानगरों में ही मौजूद हैं। छोटे-छोटे शहरों में भी जो निजी स्कूल चल रहे हैं, उनकी संख्या बहुत कम है और उसमें से भी अधिकांश स्कूल ढांचे के लिहाज से स्कूल कम, दड़बे ज्यादा हैं ? भारत के असली गांवों में सरकारी स्कूलों का चाहा-अनचाहा आसरा है। इसलिये सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय का असर देश की राजधानी और कुछेक शहरों तक ही सीमित रहने वाला है। अर्थात् शहरी गरीब बच्चों को इस निर्णय का फायदा मिल सकता है। लेकिन इस निर्णय का फायदा उठाने के लिये गरीब मां-बापों को, उनके बच्चों को यानी शहरी गरीब बच्चों को कितने पापड़ बेलने पड़ेंगे, यह तो वक्त ही बतायेगा। यह एक स्वतंत्र बहस की मांग करता है। तो कुल मिलाकर देश के बाकी बच्चे सरकारी स्कूल ही जायेंगे। लेकिन सरकार गांव-गांव में चल रहे सरकारी स्कूलों के खस्ताहाल पर एकदम चुप्पी साधे हुए हैं और उसकी जिम्मेदारी चमकीले विज्ञापनों के नियमित प्रसारण और प्रकाशन तक सीमित है।

दूसरी बात यह कि छोटे-छोटे शहरों तक में प्राइवेट पब्लिक इंगलिश मीडियम स्कूलों के जगजाहिर कुकुरमुत्ता प्रसार के पीछे असली कारण क्या हैं और इसका जिम्मेदार आखिर कौन है ? कुकुरमुत्ते की तरह हर गली-चौराहे पर खुल रहे इन पब्लिक इंगलिश मीडियम स्कूलों के विस्तार

के पीछे सरकारी स्कूलों का लचर और नाकाम होना ही एक मात्र कारण है। हर मां-बाप अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा देने की कोशिश करता है। जो लोग सक्षम नहीं भी हैं, वे भी अपना पेट काटकर प्राइवेट स्कूलों की फीस भरने को तैयार हैं। उन्हें लगता है, इन प्राइवेट इंगलिश मीडियम स्कूलों में 'पढ़ाई' तो होती है। 'पढ़ाई' होने के अनुमान के पीछे उनकी यही भोली धारणा होती है कि इन प्राइवेट स्कूलों में टीचर समय पर आते हैं, ढेर-सारा होमवर्क देते हैं, 'डिसिप्लिन' में रखते हैं, और सबसे बड़ी धारणा यह होती है कि इन स्कूलों में पढ़ने से उनके बच्चे फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने लगेंगे। उन्हें इसी बात से तसल्ली हो जाती है और उन्हें उन प्राइवेट स्कूलों की 'पढ़ाई' की वास्तविक गुणवत्ता पर ध्यान देने का ख्याल ही नहीं आता है। मासूम बच्चों के सर्वांगीण विकास में ये प्राइवेट स्कूल क्या और कितना योगदान कर रहे हैं, इस बात पर मां-बाप का ध्यान कभी नहीं जाता। उन्हें तो मिस, मैम और सर द्वारा कही गयी बातों पर और वीकली, मंथली, हाफईयरली और एन्युअल टेस्टों और एग्जामों में बच्चों को मिले नंबरों से बच्चों के प्रोग्रेस को नापने का भरम सिखा दिया जाता है। उन्हें तो यह भी सोचने-विचारने का साहस नहीं हो पाता कि इन प्राइवेट स्कूलों के मिस, मैडम, सर, प्रिंसिपल, डायरेक्टर आदि क्या वाकई उतने योग्य और कुशल हैं, जितना नन्हें-नन्हें बच्चों को गढ़ने के लिये अनिवार्यत: वांछित है ? वे तो इन प्राइवेट स्कूलों के ड्रेस, टाई, भारी-भरकम बस्ते से और फीस की रकम से ही स्कूलों की क्वालिटी और स्टेंडर्ड देखने के आदि हो गये हैं। वे तो यह भी देखने की जहमत नहीं उठाते कि जिस प्राइवेट इंगलिश मीडियम स्कूल में उनका बच्चा जा रहा है, वहां क्लास रूम हवादार और रोशनीदार है या नहीं, बैठने की व्यवस्था धकमपेल वाली यानी क्षमता से अधिक संख्या में ठूंसने वाली तो नहीं है, खेलने की जगह पर्याप्त है या नहीं, पढ़ाने का तरीका रोचक और बालोपयोगी है या नहीं अथवा बच्चों से उनका बचपन तो नहीं छीना जा रहा पढ़ाई के नाम पर ?

सरकारी स्कूलों को दुरुस्त और भरोसेमंद बनाने का एक ही कारगर उपाय नजर आता है कि इन प्राइवेट इंगलिश मीडियम स्कूलों के कुकुरमुत्तेनुमा प्रसार को सख्ती से रोका जाये। प्रशासन और सरकार यह सुनिश्चित करे कि जिनके पास पर्याप्त जगह, पर्याप्त सुविधाएं और पर्याप्त और सक्षम स्टाफ नहीं है, उन्हें मनमर्जी से स्कूल खोलने की अनुमति बिल्कुल नहीं दी जाये। साथ ही, जो स्कूल पर्याप्त जगह, पर्याप्त और सक्षम स्टाफ के बिना ही चल रहे हैं उन्हें नोटिस देकर सख्ती बरतते हुए तत्काल बंद किया जाये।

इन बातों पर पेट काटकर फीस भरने वाले हजारों-लाखों, मां-बापों का ध्यान इसलिये नहीं जाता क्योंकि यह तथ्य प्रमाणित हो गया है कि अब सरकारी स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती और इन सरकारी स्कूलों में केवल गरीबी-रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले परिवारों के बच्चे ही जाते हैं। उनमें भी अधिकतर बच्चे मिड-डे मिल के लिए जाते हैं। जो जरा-सा भी अर्थ-सक्षम है, वह अपने बच्चों को ब्रेड-बटर-जैम से लैस करके भारी-भरकम स्कूल-बैग के साथ प्राइवेट स्कूलों में भेजने को लालायित हैं। ऐसे में ये कुकुरमुत्ते की तरह फैल रहे प्राइवेट स्कूल सीना तानकर शिक्षा का परचम लहाराने का स्वांग किये जा रहे हैं और इसके उलट, सरकारी स्कूलों को उनकी बदहाली के लिये कोई टोकने-टाकने वाला तक नहीं। भला कौन टोका-टोकी करे ? जो समर्थ है, वह उसका तलबगार नहीं और जो उसके आसरे है, वह खेती मजूरी करे कि यही सब देखे कि स्कूल में मास्टर-मास्टरनी आये या नहीं ? उसे तो बस इतनी तसल्ली है कि सरकार स्कूल में उसके बच्चे को एक वक्त का भोजन मिल जाता है। उसे पढ़ाई की गुणवत्ता का वक्त कहां ?

ऐसी हालत में, सरकारी स्कूलों को दुरुस्त और भरोसेमंद बनाने का एक ही कारगर उपाय नजर आता है कि इन प्राइवेट इंगलिश मीडियम स्कूलों के कुकुरमुत्तेनुमा प्रसार को सख्ती से रोका जाये। प्रशासन और सरकार यह सुनिश्चित करे कि जिनके पास पर्याप्त जगह, पर्याप्त सुविधाएं और पर्याप्त और सक्षम स्टाफ नहीं है, उन्हें मनमर्जी से स्कूल खोलने की अनुमति बिल्कुल नहीं दी जाये। साथ ही, जो स्कूल पर्याप्त जगह, पर्याप्त और सक्षम स्टाफ के बिना ही चल रहे हैं उन्हें नोटिस देकर सख्ती बरतते हुए तत्काल बंद किया जाये। यहां यह तर्क देना एकदम असंगत होगा कि सरकारी स्कूलों में तो पर्याप्त संख्या में टीचर ही नहीं है। इन प्राइवेट स्कूलों में भी पर्याप्त संख्या में टीचर नहीं होते और एक ही टीचर आठ-आठ कक्षायें लेने को विवश होते हैं। अगर प्राइवेट स्कूलों पर सरकार और प्रशासन द्वारा नकेल कसा जायेगा तो लोगों का ध्यान खुद-ब-खुद सरकारी स्कूलों पर जायेगा। लोग सरकारी स्कूलों पर बेहतर व्यवस्था, नियमित पढ़ाई और उम्दा रिजल्ट के लिये दबाव बनायेंगे। यहां बिल्कुल डिमांड और

सप्लाई का सिद्धांत काम करेगा। सरकारी स्कूलों पर हर तबके के मां-बाप जोर डालेंगे तो वे जरूर सुधरेंगे। सरकारी स्कूलों के टीचर चौकन्ने और तत्पर रहेंगे और जितनी सुविधाएं हैं, उतने में ही सर्वोत्तम देने को बाध्य होंगे। इसी तरह, प्राइवेट स्कूलों पर नकेल कसा जायेगा तो वे भी मनमर्जी से जरूरत से ज्यादा संख्या में बच्चों को एडमिशन देने में हिचकेंगे।

इसी के समानांतर, सरकारी स्कूल बेहतर होंगे तो उनकी डिमांड भी बढ़ेगी और प्राइवेट स्कूलों पर विवशतापूर्ण निर्भरता घटेगी। इसके साथ-साथ, सरकार और जिला प्रशासन को हर जिले के शिक्षा-विभाग में मनचाहे ट्रांसफर-पोस्टिंग से जुड़े भ्रष्टाचार को भी सख्ती से मिटाना होगा। नेता और दलाल बने टीचरों को सख्ती से दंडित करना होगा। टीचर-यूनियनों को यह बात साफ-साफ कहनी होगी कि सरकारी टीचरों को मोटी-मोटी तनख्वाहें स्कूलों में पढ़ाने के लिये दी जाती हैं, नारेबाजी और निठल्लेपन के लिये नहीं। सरकारी स्कूलों के टीचरों को अक्सर एक चालाकीपूर्ण शिकायत रहती है कि उन्हें पशु-गणना से लेकर जनगणना और पल्स पोलियो के अभियान तक में जोत दिया जाता है। तो जनाब। आप स्कूलों में पढ़ायें नहीं तो आपकी ऐसी दुर्दशा तो होनी ही हैं। और अब तो मल्टी-टास्किंग का जमाना है। मोटी पगार मुफ्त में अब और नहीं मिलेगी। सरकारी स्कूलों के टीचरों को शायद अनुमान भी नहीं होगा कि प्राइवेट स्कूलों के टीचरों को उनकी तुलना में आधे से भी कम वेतन और सुविधाओं में स्कूल-प्रबन्धन के इशारों पर कितने-कितने और कैसे-कैसे काम करने पड़ते हैं ? हुक्म न मानी तो मिनट में नौकरी से निकाल दिये जाने का डर बेताल की तरह कंधे पर बैठा रहता है, सो अलग ।

कुल मिलाकर, देश में शिक्षा की सरकार की व्यवस्था को ही दुरूस्त करना होगा, तभी देश की इतनी विशाल आबादी को शिक्षा मिल पायेगी। देश की बहुत बड़ी और गरीब आबादी गांवों में रहती है। वहां ग्राम पंचायतों को इस दिशा में क्रांतिकारी स्तर पर सक्रिय करना होगा। हर एक ग्राम-पंचायतों में सरकारी स्कूलों को दुरु स्त करने की दिशा में सक्रियता आयी भी है। अगर देश में सभी बच्चों को शिक्षित करना है, तो शिक्षा की आउटसोर्सिंग बंद कीजिये। प्राइवेट स्कूलों को रत्ती भर उपकार का जिम्मा दे देने से देश का उद्धार नहीं होने वाला। स्कूलों की तुलना मल्टीप्लेक्सों और मेगामालों से करना बेवकूफी होगी। जैसे छोटे-छोटे किराना दुकानों के बगैर देश के अधिकांश परिवारों का गुजारा नहीं होने वाला, वैसे ही सरकारी स्कूलों के बिना देश की आबादी शिक्षित नहीं होने वाली। इंजीनियरों, डॉक्टरों, अफसरों, पूंजीपतियों के बच्चों के लिये एयर-कंडीशंड, फाइव स्टार प्राइवेट स्कूलों को रहने दीजिये। करोड़-करोड़ किसानों-मजूरों-दलितों-ग्रामीणों के लिये सरकारी स्कूल ही सबसे समर्थ, सबसे सक्षम, सबसे सही विकल्प है। इसलिये, हे भाग्य विधाता ! सरकारी स्कूल को गाली मत दीजिये, गरियाइए नहीं, उन्हें दुरुस्त कीजिये ! ❑

सहायक प्रबन्धक (राजभाषा)
तीसरी मंजिल, भारतीय रिजर्व बैंक,
आश्रम रोड़-अहमदाबाद, गुजरात-३८०००९
मोबाईल-०-९४२९६०८१५९

हमारे सवाल ?

❑

सर्वोच्च न्यायालय कहता है कि सभी प्राइवेट एवं पब्लिक स्कूलों को गरीब बच्चों के लिये आवश्यक स्थान जरूर रखना चाहिये। मगर हमारा शिक्षा के अधिकार का कानून यह भी कहता है कि इन गरीब बच्चों की पढ़ाई का खर्चा प्राइवेट स्कूलों को उन्हीं की शर्तों पर केन्द्र सरकार और राज्य सरकार मिल कर के दे देंगी।

अब हमारा प्रश्न यह है कि प्राइवेट स्कूलें स्वयं गरीब बच्चों के लिये बिना किसी शुल्क के पढ़ाने की व्यवस्था क्यों नहीं करें ?

समाज के प्रति उनका अपना कोई दायित्व नहीं बनता है क्या ?

उन्होंने अब तक सम्पत्ति का जो साम्राज्यवादी अम्बार जुटाया है वह कहां से आया ? उनकी इमारतें, उनकी जमीन और उनके साथ घनघोर अपमान जनक वेतन पर काम करने वाले अध्यापक-अध्यापिकाएं एवं अन्य लोग कहां से आये ?

लोग यह भी जानते हैं कि अधिसंख्य पब्लिक स्कूलों के लिये जमीनें रियायती दरों पर आवंटित की गयी हैं। वह रियायत इसलिये थी कि वे समाज के गरीब तबके का भला करेंगे। क्या ऐसा हुआ है ? पाठक कृपया अपने विचारों से हमें अवगत करायें। ❑ सं.

कृषक जी की गज़लें

❑

भाई रामकुमार कृषक दिल्ली में रहते हैं। अलाव नाम की पत्रिका के संपादक हैं। विचारों से वामपंथी हैं मगर मन से बहुत उदार हैं। भाषा में मधुरता है मगर स्वर में एक खास तरह की तल्खी है। खेत तो उनके पास नहीं है मगर कागज पर शब्दों की खेती जरूर करते हैं। कभी गुढाई करते है, कभी निराई करते हैं और दिल्ली में बैठे सारी साहित्यिक उठा-पटक को अपने धीर-गंभीर भाव से देखते रहते हैं। कृषक जी दिल से भी सच्चे कवि हैं और कर्म से भी । पाठक उनको उनके पते पर पत्र लिखकर उनकी पत्रिका अलाव का बानगी एक मुफ्त में मंगवा सकते हैं। ❑

सं.

एक

❑

हम नहीं खाते हमें बाज़ार खाता है
आजकल अपना यही चीजों से नाता है

पेट काटा हो गयी खासी बचत घर में
है कहां चेहरा, मुखौटा मुस्कुराता है

नाम इसका और उसके दस्तख़त हम पर
चेक बियरर हैं जिसे मिलते भुनाता है

है ख़रीददारी हमारी सब उधारी पर
बेचनेवाला हमें बिकना सिखाता है

सामने दिखता नहीं ठगिया हमें यों तो
हां, कोई भीतर ठहाका-सा लगाता है ❑

दो

❑

हाथ खींचा हर तरह जीना हुआ
पी लिया जी का ज़हर पीना हुआ

पैराहन-पोशाक की मत पूछिये
थिगलियों को आये-दिन सीना हुआ

खत्तियां-खलिहान उनके ही सही
है यहां भी कुछ सिला बीना हुआ

बाल-बच्चो के लिए ही दे दिया
बाल-बच्चों से समय छीना हुआ

एक बरतन की तरह घर में रहा
उनकी महफ़िल में गया मीना हुआ ❑
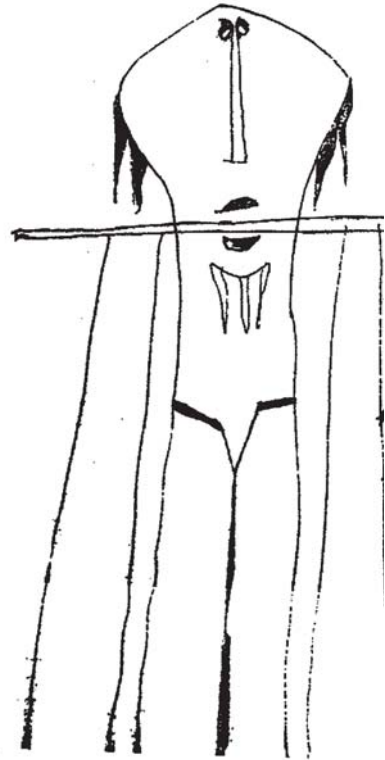
तीन

❑

नाम था कुछ और पर 'हां जी' रहे
जुल्म में उनके सदा साझी रहे

थे बहुत कुछ वे रहे होंगे मगर
गाज–जैसे सब कहीं ग़ाज़ी रहे

लोग जो ख़ुशियां सभी की छीनते
क्या बुरा है उनसे नाराज़ी रहे

प्यार हम करते रहे इंसान से
घूरते बेशक कई क़ाज़ी रहे

हम सुख़नवर हैं चलो बाहर चलें
सोच भी ताज़ा जुबां ताज़ी रहे ❑

पेंटिंग – हकुशाह

चार

❑

और भी ख़बरें अभी बाक़ी
बेदिलों की दिल्लग़ी बाक़ी

हो चुके इतिहास सब दुर्दिन
बीतने को है सदी बाक़ी

आदमी पत्थर हुआ तो क्या
आदमीयत की नदी बाक़ी

सिर्फ़ ठग ही ठग भले हों सब
रह न पायेगी ठगी बाक़ि

चार दिन का ही अंधेरा है
चांदनी के दिन सभी बाक़ी ❑

शिक्षा संसार में अभिभावकों की अनुपस्थिति

❑

आशा अय्यर

बालकों की शिक्षा घर में होती है। फिर यदि उनकी शिक्षा का दूसरा स्थान शालाएं बनती हैं तो वहां भी घर की उपस्थिति उतनी ही अनिवार्य है। अध्यापकों और अभिभावकों के सार्थक एवं सृजनात्मक सहकार के बिना कभी भी बालक की शिक्षा सम्पूर्ण नहीं हो सकती। तो फिर जरूरी यह है कि अभिभावकों की शिक्षा पहले हो और बालकों की बाद में। इस पूरे मसले से जुड़े कई सवालों पर विचार कर रहीं हैं आशाजी जो इंदौर में रहती हैं और कनुप्रिया के नाम से कहानियां भी लिखती रही हैं। ❑ सं.

बच्चों की शिक्षा की बात जब भी होती है सामान्यतया शिक्षकों, शिक्षा नीतियों व इनसे जुड़े प्रशासनिक अधिकारियों की ही बात प्रमुख रूप से होती है। एक बच्चे की शिक्षा-दीक्षा में अभिभावकों का कितना महत्त्वपूर्ण योगदान होना चाहिए, इस पर जैसे विचार ही नहीं किया जाता है, बल्कि इसे एक प्रकार से 'टेकन फॉर ग्रांटेड' लिया जाता है। मेरा अपना अनुभव यह है कि बच्चों के माता-पिता को शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया में केवल फीस व अन्य भौतिक साधनों के प्रदाता, प्रगति पुस्तिका में हस्ताक्षर करने वाले और बुलाये जाने पर विद्यालय में आकर अपने बच्चों की शिकायतें सुनने वाले एक अभिभावक के ही रूप में देखकर संतुष्टि कर ली जाती है। होना तो यह चाहिए कि माता-पिता को बच्चे के **शिक्षा-त्रिकोण** की सबसे महत्त्वपूर्ण भुजा मानना चाहिये। दुख तो यह है कि अधिकांश माता-पिता अपने बच्चे को अपनी ओर से बेहतरीन समझे जाने वाल विद्यालय में प्रवेश दिलवाने को ही अपना प्राथमिक व अंतिम कर्तव्य मान दृश्य पटल से हट जाते हैं। अपने कार्यकाल में मुझे व्यक्तिगत रूप से यह लगा कि उन्हें भी मागर्दशन व हौसला अफजाई की आवश्यकता होती है और उन्हें ये जताये जाने की परम आवश्यकता है कि बच्चे को कितने ही अच्छे स्कूल में क्यों ना भर्ती कराया गया हो, उन्हें लगातार अपने माता-पिता की जरूरत होती है। उन पर लगातार नजर रखने की भी जरूरत होती है। आज भारत समेत हर कहीं अनेकानेक समस्याएं हैं। मल्टी मीडिया की घोर व्यापकता से उपजी हुई समस्याओं का कहीं ओर-छोर ही नहीं है। हम सब शिक्षकों व शिक्षण व्यवस्था को जी भर कोस लें तो समाधान तो नहीं हो जायेगा ना ?

आदर्श स्थिति तो यह होगी कि पहली कक्षा में बालक बालिका के साथ उनके माता-पिता भी आयें और पहले दिन से ही शिक्षक के साथ वे बच्चों के विकास में हाथ बंटाएं। बच्चे के साथ शिक्षक व माता-पिता दो अलग-अलग ध्रुवों की भांति चलते रहते हैं और शिक्षक को तो यह लगने लगता है कि उसके जंगल में दूसरा शेर ना ही आये। घर में शिक्षक का नाम न लिया जाये व स्कूल में अभिभावक क्या कहते हैं या सोचते हैं- यह जानने या सुनने का अवकाश ही शिक्षकों को नहीं होता है, ऐसा ही है-इसलिए बच्चे को लेकर रस्साकशी चलती रहती है।

स्कूल की बातें घर में और घर की बातें स्कूल में न कह पाने की लाचारी में

एक विद्यार्थी अपनी व्यथाओं को अकेले ही भुगतते रहने को विवश है। अलग-अलग सामाजिक व आर्थिक परतों से आने वाले, मगर एक साथ बैठकर पढ़ने को लाचार बच्चे एक-दूसरे के सामने मन की बात कहें भी तो कैसे ? आजकल यद्यपि विद्यालयों में 'काउंसलर' भी नियुक्त किये जा रहे हैं, लेकिन क्या किसी ने देखा है कि वे किस उम्र के हैं एवं उन्हें क्या व कितना अनुभव है? विविध प्रकार की पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्थाओं में से निकलकर आने वाले बच्चों की कितनी समस्याएं उन्हें किस हद तक समझ में आती होंगी, इसे जानने के लिये मुझे व आपको बहुत मेहनत न करनी होगी।

इतनी लंबी भूमिका बांधे बिना मैं अपनी बात शुरू नहीं कर सकती थी, क्षमा करें। नौकरी मैंने केन्द्रीय विद्यालय में की है, मगर यह कहना समीचीन होगा कि निजी व पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के माता-पिता किसी अन्य ग्रह से आये हुए नहीं होंगे, इसी देश की मिट्टी में से ही निकले होंगे, अत: बात बहुत दूर की नहीं होगी। जो मैं यहां कहूंगी, वह लगभग सभी पर लागू हो सकता है।

'बालकों का हृदय कितना कोमल होता है, इसका अनुमान दूसरा नहीं कर सकता। उनमें अपने भावों को व्यक्त करने के लिये शब्द नहीं होते। उन्हें यह भी नहीं पता होता कि कौन सी बात उन्हें विकल करती है और कौन सा कांटा उनके हृदय में खटक रहा है, क्यों बार-बार रोना आता है, क्यों वे मन मारे बैठे रहते हैं, क्यों उनका खेलने में जी नहीं लगता है।'

क्या आपको नहीं लगता कि **प्रेमचंद** के ये शब्द सर्वकालिक हैं ? पहले जमाने में बच्चा माता-पिता के ही आदेशों-निर्देशों पर चलने वाला कठपुतली था अब उनकी

दुनिया को टुकुर-टुकुर देखने के लिए, घर व पड़ोस को अपनी तुतलाहट व मीठी-मीठी बातों से भर देने व अटपटी बाल क्रीड़ाओं से मुग्ध कर देने की मोहलत आज एक भी बच्चे के पास नहीं है। उसके बचपन की निमर्म हत्या की जा रही है मगर वह किस कोर्ट में अपील करे ?

महत्वाकांक्षाओं की बलिवेदी पर चढ़ाया जाने वाला बकरा। **उसे एक स्वतंत्र व्यक्ति न तब माना जाता था, न अब । आधुनिक शिक्षा उस पर यूं लादी जा रही है जिसमें २ से ५ वर्ष तक का बचपन तो पता नहीं कहां गुम गया है ?** दुनिया को टुकुर-टुकुर देखने के लिए, घर व पड़ोस को अपनी तुतलाहट व मीठी-मीठी बातों से भर देने व अटपटी बाल क्रीड़ाओं से मुग्ध कर देने की मोहलत आज एक भी बच्चे के पास नहीं है। उसके बचपन की निमर्म हत्या की जा रही है मगर वह किस कोर्ट में अपील करे ?

बात हम वहीं से आरंभ करें जब बच्चे को पहली बार शाला भेजने का उपक्रम किया जाता है-**प्ले स्कूल ? किंडर गार्टन?** पहली? यानि कि जब भी कोई अभिभावक अपनी संतान को पढ़ने-सीखने के लिए एक संस्था में भेजने का इरादा करे-तबसे।

हम बहुत छोटी उम्र में बच्चे को बाहर सीखने के लिए क्यों भेजना चाहते हैं ?

कल्पना कीजिए कि जिस बच्चे को अपनी आवश्यकताओं को समझना व जतलाना ही नहीं आता है, उसे ३ से ५ घंटे तक के लिए अपरिचित लोगों के बीच भेजना।

चूंकि हर कोई भेज रहा है-इसे सबसे जानदार तर्क माना जाता है।

दूसरा यह कि वाह। हम क्या अपने बच्चे को सबसे पीछे रह जाने दें ?

मैं आपको बताऊं कि जब मैंने एक मां को अपनी पौने दो साल की बच्ची को स्कूल भेजते देखा तो उनसे पूछा कि वे क्यों इतनी छोटी बच्ची को स्कूल भेज रही हैं ? उन्होंने मुझे यही दूसरा जवाब दिया।

इतनी उम्र में बच्चे मां की गोद में बैठे अंगूठा चूसते रहते हैं। उन्हें भरपूर सुरक्षा और स्नेह की आवश्यकता होती है। अधिकतर स्कूल तो घरों से कई-कई किलोमीटर दूर होते हैं। कैसे भेज देती है मांएं- मैं यही सोच-सोच कर स्तब्ध होती रहती हूं।

उन्हें निडर बनाने, आत्म निर्भर बनाने आदि के ऐसे भारी तर्क दिये जाते हैं कि बस। **'सहज पके सो मीठा होय'** वाली कहावत किसी को जैसे याद ही नहीं है। हमें बहुत जल्दी है, इसलिए बच्चा तो रातों-रात बड़ा नहीं हो जायेगा ? उसने मस्तिष्क, संवेगों, इंद्रियों आदि को पूर्णत: विकसित होने, परिपक्व होने के लिए नैसर्गिक रूप से लगने वाला समय तो हमें देना होगा ना ?

जरा गौर से देखिये कि आज के बच्चों को कितनी मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं ? क्या इनमें से अधिकांश हमारी दी हुई नहीं हैं ?

क्या हमने उनकी शारीरिक क्षमताओं को आंक लिया था ?

क्या वे पूरी तरह से स्वस्थ हैं ? उन्हें आंख, कान, सांस, संबंधी कोई शिकायत तो नहीं है ? उनके शारीरिक बनावट में ऐसी कोई खामी तो नहीं है जिस कारण उन्हें कक्षा में शिक्षक व सहपाठियों की टिप्पणियों का शिकार होना पड़ेगा ?

अगर ऐसा है तो आपने उसे आत्म रक्षा के कौन से गुर सिखाये हैं ?

वस्तुत: ऐसी बातें जब भी मैंने किसी अभिभावक या शिक्षक साथी के सामने उठाई है तो अवहेलना व निंदा ही मिली है मुझे। इतने सारे बच्चों में हम ये सब थोड़ी ना देखते रह सकते हैं। ये तो उनके माता-पिता को सोचना चाहिए। यह शिक्षकों का तर्क रहता है। माता-पिता तब तक ऐसी बातों पर प्राय: ध्यान नहीं देते हैं जब तक कि बच्चे को भारी नुकसान ना हो या स्कूल की तरफ से बुलाकर उन्हें बताया न जाये।

अति शीघ्रता क्यों ?

माता-पिता बच्चों को पढ़ने भेजने में अति शीघ्रता करते हैं। वे ठीक से खड़े हो सकें, ठीक से अपनी बात नये लोगों के सामने रख सकें इसके पहले ही उन्हें स्कूल भेजना किस प्रकार से उचित हो सकता है ? ऐसे दृश्य हर गली मौहल्ले में देखने को मिलते हैं कि सुबह ७ से ९ बजे के बीच बच्चों को गोदी में उठाके उनके खाने के डिब्बे व पानी की बोतलें लेकर उनके माता-पिता उन्हें बसों में छोड़ने आते हैं और इसी प्रकार दोपहर १२ से ३ के बीच उन्हें वापस लेने आते हैं। इस समय अधिकांश बच्चे सोने की कगार पर होते हैं।

क्या बसों के चालक, सहायक प्रशिक्षित होते हैं कि इतने छोटे बच्चों के मनोभावों व आवश्यकताओं को समझ सकें? क्या वे पूरी तरह विश्वसनीय होते हैं? क्या इतने छोटे बच्चों को पूरी भावनात्मक सुरक्षा मिल रही है ? क्या उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं है ?

या... ध्यान दें.... कहीं हमें यही तर्क तो सुनने को नहीं मिलने वाला कि **'लाखों बच्चे जा रहे हैं कि नहीं ?**

हां, जा रहे हैं, लेकिन क्या हम पूरी गारंटी के साथ कह सकते हैं कि वे हर प्रकार से सुरक्षित हैं ? क्या हम प्रतिदिन अखबारों

माता-पिता बच्चों को पढ़ने भेजने में अति शीघ्रता करते हैं। वे ठीक से खड़े हो सकें, ठीक से अपनी बात नये लोगों के सामने रख सकें इसके पहले ही उन्हें स्कूल भेजना किस प्रकार से उचित हो सकता है ?

में नहीं पढ़ रहे कि चारों ओर किस प्रकार के अपराध हो रहे हैं ?

शासन की नीति तो कहती है कि तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चे स्कूल नहीं भेजे जा सकते, लेकिन बड़े-बड़े अपराधों से भरे इस देश में स्कूली बच्चों की बसों में या ऑटो में आये दिन होने वाले इन अपराधों या सच कहें तो अनैतिकताओं पर कौन ध्यान दे रहा है ? वो भी ऐसे में जबकि स्वयं माता-पिता इस ओर कोई तवज्जो नहीं दे रहे।

और उससे भी बड़ी बात यह है कि **अधिक से अधिक फीस लेने वाले स्कूल को ही अपने बच्चों के लिए सर्वोत्तम मानने वाले पालकों के रहते कई-कई मील दूर भेजे जा रहे बच्चों की सुरक्षा की जिम्मेदारी कोई बाहरी एजेंसी क्यों ले ?**

इतने छोटे बच्चे ना तो अपनी व्यथा कह सकते हैं ना ही न्याय मांग सकते हैं। स्कूलों को धनार्जन का सबसे सरल व सुनिश्चित माध्यम माना जाने लगा है। पालकों को इस प्रकार की मानसिकता के कारण और अति क्षीण राजनीतिक इच्छाशक्ति के चलते हमारी सरकारें भी इस ओर ध्यान नहीं देतीं।

क्या हमारी सरकारों को और हमारे जन-नेताओं को सच में भारत के भविष्य की चिंता है ? हम किस प्रकार की नई पौध पैदा कर रहे हैं ? वह जो अपनी ही पदचाप से भयभीत है ? जो ८ से १० बरस का होने के पहले ही आत्म विश्वास खो बैठती है ? जिस पर नर्सरी से ही घरवाले इतना दबाव बनाने लगते हैं कि वह हर काम में अव्वल रहे ? जिसे ३ साल की उम्र से ही यह सुनने को मिलने लगता है कि उसके पालक उस पर इतना धन व्यय कर रहे हैं कि अपेक्षित परिणाम ना देकर वह उन्हें धोखा दे रहा है ?

ये तो कुछ ही सवाल हैं जो मैं आपके सामने रख रही हूं, व्यक्तिगत तौर पर आप सबके सामने इनसे भी बड़े व विकराल सवाल खड़े होंगे।

अपनी अपूर्ण व अति उत्साही महत्वाकांक्षाओं का आरोपण।

संतान का लिंग भी मालूम नहीं होता है, तभी से पालक उनके भावी रास्ते तय कर देते हैं और वे बोलना सीखें उसके भी पूर्व उसके सपने तय कर देते हैं-मेरी बेटी डॉक्टर बनेगी या मेरा बेटा आई.ए.एस. बनेगा... वगैरा, वगैरा। और आजकल तो हर लड़के को सचिन, हर लड़की को ऐश्वर्या आदि बनाने की ऐसी निष्ठुर दौड़ लगी हुई है कि बस। स्कूली पढ़ाई के साथ उसे गीत, नृत्य, कोई एक खेल और सबके साथ जनरल नॉलेज में सबसे आगे रहने की ऐसी ललक कि एक प्रकार का भय सा मुझे होने लगता है। जैसे कि बहुत अधिक तान देने से सितार के तार टूट जाते हैं। **हर जगह प्रतिस्पर्धा ही क्यों हो ? क्या हर बच्चे को उसकी अपनी क्षमता व अभिरुचि के अनुसार आगे बढ़ने की छूट नहीं होनी चाहिए ?**

हम तो अपनी इच्छाएं पूरी नही कर पाए, हमारे माता-पिता के पास इतना धन नहीं था, हमारे समय तो यह सब नहीं था, आदि कहना अपने बच्चे का भावनात्मक शोषण ही है। और इसी कारण यदा-कदा हमें आत्महत्या जैसा विकराल कदम उठाते बच्चे मिल जाते हैं।

समाज व परिचितों का दबाव

९९ प्रतिशत लोगों को या तो समाज का या अपने परिवार व परिचितों की आलोचना का डर खाये जाता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर बच्चे के विकास के **'माइल स्टोन'** अलग अलग उम्र में पाए जा सकते हैं लेकिन पालक तो उसे धकेले जाते हैं बराबरी के लिए। **मेरी ननद की बेटी तो साल भर की भी नहीं हुई थी कि बोलने लगी थी हमारा बेटा अभी तक क्यों नहीं बोल रहा ?'** फिर उसे बुलवाने के प्रयास और तेजी से होने लगते हैं। **तारें जमी पर देख** लेने के बाद एक आंधी सी आई थी। शिक्षित तबके में और अपने-अपने बच्चे के लिए लोग कहीं स्पीच-थिरैपिस्ट तो कहीं मनोवैज्ञानिक के पास जाने लगे थे। हर बच्चा दूसरे से सैकड़ों प्रकार से भिन्न हो सकता है- यह समझने में हमारे पालकों को बहुत प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

कुछ संपन्न लोग हैं हमारे देश में जो अपने बच्चों को घर में ही पढ़ा रहे हैं। वे जानते हैं कि अगर देश के भीतर उनकी आगे की शिक्षा संभव नहीं हो तो वे उन्हें बाहर भेजके पढ़वा लेंगे। लेकिन इस अंधी दौड़ में लगे सामान्य पालकों के बच्चों का क्या होगा? बल्कि यूं पूछूं कि क्या हो रहा है ? हम तो मजबूर हैं कि चाहकर भी किसी अन्य प्रकार की शिक्षा उन्हें दिलवा ही नहीं सकते। १० वीं के बाद उनका क्या होगा ? उच्च शिक्षा के लिए वे क्या करेंगे ?

मैं तो शिक्षिका भी थी और अपने बच्चे की मां भी।

जब मेरे बेटे ने चौथी कक्षा में से पांचवीं कक्षा में प्रवेश किया तो गर्मी की छुट्टियों के लिए उसे ढेर सारा काम मिल गया। मेरे पति को २१ दिन के सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु बंगलुरू जाना था। हम सपरिवार चले गये। मेरी बेटी जिसने उस साल आठवीं से नवीं में कदम रखा था, उसे भी काफी काम मिला था, लेकिन दोनों में बड़ा अंतर था। बेटी को ऐसा काम मिला था जो उसके आगे की कक्षाओं में काम आने वाला था और बेटे को मिला था चौथी कक्षा के सारे प्रश्न पत्रों को हल करने का काम।

वह अड़ा हुआ था कि जो करके मैं अच्छे नंबरों से पास हो चुका, उसे मैं क्यों फिर से करूं ? मैंने एक अध्यापक के रूप में उसे सारे तर्क दे डाले कि इससे ज्ञान पक्का हो जायेगा।

उसने कहा-कुछ भी पूछ लो।

मैंने पूछा और उसने सारे प्रश्नों के काफी संतोषजनक उत्तर दिये।

मैंने कहा कि इससे लिखाई सुधरेगी, उसने मुझे बड़ी विद्रोही नजरों से देखा।

वह मेरे और मेरे पति की हर बात की अनदेखी कर गिल्ली डंडा खेलता रहा १५ दिन तक। मेरे धीरज का बांध टूट गया, मैंने धमकाया तो वह कह उठा-**'जिसने स्कूल और वेकेशन में होमवर्क शुरु किया वो मुझे मिल जाये तो मैं उसे ठांय ठांय कर दूं।'**

यह कहते-कहते वो रो पड़ा और वे आंसू गहरी बेबसी, लाचारी के थे। बात हंसके टाल देने वाली नहीं थी, गंभीर थी। बहुत सोच-विचार के बाद हमने उसे बिठाकर ये समझाया-

हम-बेटा, अपने देश में १० या १२ कक्षा की पढ़ाई के बिना आगे कोई और रास्ता चुनने का दूसरा उपाय ही नहीं है।

बेटा-क्या उसके बाद पढ़े बिना काम चल जायेगा ?

हम-हां चल तो जायेगा, लेकिन उसके लिये तुमको बहुत कुछ सुनना पड़ सकता है।

बेटा-क्या ? किससे ?

हम-यही कि तुम पढ़ लिख नहीं पाये क्योंकि तुमसे बना नहीं। फिर तुमको बड़ी-बड़ी नौकरियां नहीं मिलेंगी।

बेटा-तो मैं कोई बिजनेस कर लूंगा।

हम-तो उसके लिये पैसे कहां से आयेंगे ?

बेटा-क्यों, आप नहीं देंगे क्या ?

हम-देंगे, पर उतना ही ना जितना हमारे पास होगा। उसके बाद तो तुमको ही जुगाड़ करना होगा ना।

बेटा-सोच में पड़ गया। कुछ देर बाद बोला-मुझे पी.ई.टी., पी.एम.टी. नहीं देनी है। मुझे डॉक्टर, इंजीनियर नहीं बनना है।

हम-ठीक है, मत बनो।

बेटा-तो क्या करूंगा ?

हम-ऐसा करो अभी तुम दसवीं तक
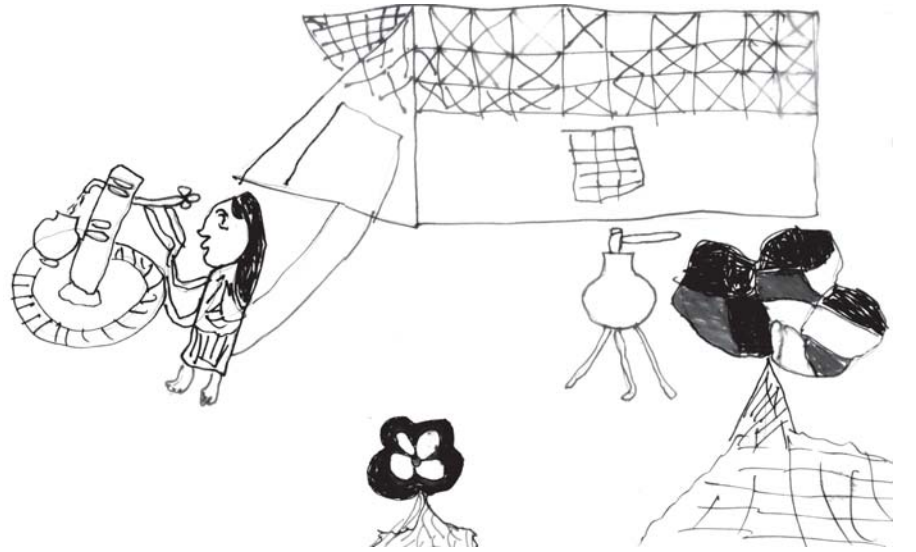
पढ़ो और अच्छे से पढ़ो। जिस दिन तुम दसवीं कर लो, उस दिन तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसे करना।

बेटा-हां, आज आपको मुझसे होमवर्क कराना है इसलिये कह रही हो, जब मैं पास हो जाऊंगा, तब कुछ और करने को कहोगी।' उसकी आवाज में अविश्वास था, घोर अविश्वास।

हम-नहीं, हम ऐसा नहीं करेंगे। मगर, हां, हम उतना ही कर सकेंगे जितना हमारे पास होगा, हम उधार लेकर तुमको या तुम्हारी बहिन को नहीं पढ़वायेंगे।

बेटा-जेंटलमैन्स प्रॉमिस ? उसने बायें हाथ के अंगूठे पर दायें हाथ का अंगूठा टिकाकर पूछा।

हां। हम दोनों ने उससे पक्का वादा किया।

हमने वह वादा निभाया मगर बारहवीं के बाद क्योंकि दसवीं के बाद उसकी रुचि का कोई विषय उसे नहीं मिला था।

उसने फैशन डिजाइनिंग में बी.एस.सी. किया और अपना बुटीक चला रहा है।

ये सारी घटना मैं इसलिये बता रही हूं कि **माता-पिता के लिये बच्चों को सही डगर पर चलाना सरल तो कभी भी नहीं होता।** शिक्षा जगत् में क्या चल रहा है, यह पता न रहना बड़ा घातक हो सकता है। मगर प्रश्न यह है कि ये सारी सूचनायें माता-पिता तक पहुंचे कैसे कि वे अपनी संतान के छुटपन से ही उसकी रुचि व रुझान जाकर उसे प्ररित कर सकें ? क्या यह सरकारों का दायित्व नहीं ? हमारे पास दूरदर्शन जैसा सशक्त माध्यम होते हुए भी उसका कोई सदुपयोग आज तक इस दिशा में नहीं हुआ है ? गांव-गांव में टी.वी. रेडिया तो हैं पर उनमें माता-पिता को मार्गदर्शन देने वाले, उनके प्रश्नों के उत्तर देने वाले एवं उनकी चिंताओं को दूर करने वाले कितने कार्यक्रम होते हैं ? उन्हें इस मामले में प्रशिक्षित किया जाना

माता-पिता बच्चों को पढ़ने भेजने में अति शीघ्रता करते हैं। वे ठीक से खड़े हो सकें, ठीक से अपनी बात नये लोगों के सामने रख सकें इसके पहले ही उन्हें स्कूल भेजना किस प्रकार से उचित हो सकता है ?

चाहिये। इस बात पर ही कब गौर किया गया है ?

और कुछेक अति जागरूक एवं सुशिक्षित पालकों को छोड़ आज भी कितने पालक हैं जो अपने बच्चों की रुचि, रुझान या आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुये उनके लिये विषय या व्यावसायिक शिक्षा का चयन करने में मदद करते हैं ?

जीवन के अन्य पहलू

केवल जीवनयापन ही नहीं, मन और आत्मा की संतुष्टि के लिये भी बच्चों के जीवन में कहीं कोई गुंजाइश होनी चाहिये, इसकी जरूरत पर कितने लोग ध्यान देते हैं ?

बच्चों को रुपया ही नहीं, ध्यान भी देना पड़ता है, उनके साथ समय बिताना पड़ता है, उनके साथ विवेकपूर्ण संवाद स्थापित करना होता है, उनके छोटे से छोटे डर के साथ उनके मन में सिर उठा रहे भ्रम, संशय, उनकी कुंठाओं एवं पूर्वाग्रहों से भी उन्हें जूझना सिखाना पड़ता है।

नाटा होना, काला होना, शरीर के अंगों का सही अनुपात न होना, चाल ठीक न होना, आवाज लिंग के स्थापित मानदंड के अनुरूप न होना, छोटी सी उम्र में चश्मा लग जाना, अतिशय संकोच, वाणी के दोष से लेकर मानसिक व बौद्धिक समस्याओं तक उनके सामने असंख्य समस्याएं होती हैं। माता-पिता के पास न केवल निशर्त प्यार होना चाहिए बल्कि जीवन व समाज के साथ सामंजस्य बिठाने की शिक्षा भी उन्हें अपनी संतान को देनी पड़ती है।

बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य

बच्चे बड़े ही संवेदनशील होते हैं। कहा जाता है कि उनकी छठी नाड़ी बड़ी ही सशक्त होती है। सामने वाले की दृष्टि, उससे छुपे भाव, एक हल्के स्पर्श से, स्वर के उतार चढ़ाव से समझ जाते हैं कि व्यक्ति अच्छा है कि बुरा। उन्हें बुद्धू नहीं बनाया जा सकता है। दूसरी ओर वे अत्यंत छुईमुई भी होते हैं। इस कारण बच्चों की मानसिक आवश्यकताओं का ध्यान रखना बहुत जरूरी है। हमारे देश में इस दृष्टि से दो प्रकार के पालक मिलेंगे-एक, जो आज भी बच्चों की भावनाओं की कदर नहीं करते, वे समझते हैं कि बच्चा कुछ नहीं समझता है।

दूसरे वे जो अति आधुनिक हैं एवं कुछ ज्यादा ही बच्चों की भावनाओं का ध्यान रखते हैं और ५ या ६ बरस का होते-होते ऐसा बच्चा अपने माता-पिता पर हावी होने लगता है। इन दोनों के बीच का रास्ता ही लाभदायक हो सकता है।

असीमित व निशर्त स्नेह दें।

आप सबने यह देखा होगा कि बच्चे अपने माता-पिता से पिटने के बाद, डांट खाने के बाद भी सांत्वना के लिये उन्हीं के पास आते हैं। हर स्थिति में उन्हें अपने माता-पिता पर विश्वास होता है। अपने किसी भी दोष का उत्तरदायी बच्चा स्वयं नहीं होता है।

ऐसा होने में सबसे बड़ा दोष प्राय: बड़ों का ही होता है। झूठ बोलना, आक्रामक होना, गंदी हरकतें करना, आदि अभिभावकों के ध्यान न देने से ही उपजते हैं। ऐसे में अपराध बोध से ग्रसित हो अत्यधिक प्रेम देना या हिंसक हो जाना-दोनों ही दो अतियां होंगी।

प्राय: शारीरिक कमी वाले बच्चों को माता-पिता कोई न कोई विशिष्ट कार्य को संपन्न करने के लिए कहते हैं व ऐसा करने पर बहुत प्यार देने का वादा करते हैं-

जैसे-निशा अपनी गूंगी बेटी को कहते हैं कि मां, मां बोलो। बोलोगी तो उठाके ले चलूंगी। या खरे जी अपने चार वर्षीय बेटे को, जिसे किसी अस्थि रोग के रहते ठीक से चलते नहीं बनता, अक्सर कहते हैं कि यहां कुर्सी तक आओगे तो चॉकलेट दूंगा।'

जरा कल्पना कीजिये कि इन बच्चों के दिल पर क्या गुजरती होगी ? ऐसा ही व्यवहार बाद में कक्षा में होने पर यही अभिभावक आग बबूला हो उठते हैं। अपने बच्चों को यूं हताश व हतोत्साहित करने का अधिकार इन्हें कहां से मिल गया ?

विश्वास दीजिये विश्वास लीजिये।

शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों में ही नहीं, अनेक स्वस्थ बच्चों में भी आत्म विश्वास की बेहद कमी होती है। इस कमी को दूर करना माता-पिता का ही दायित्व है। उनकी बातों पर विश्वास कीजिये। अश्विन ने बार-बार घर में कहा कि उसे बोर्ड पर लिखा हुआ नहीं दीखता है तो उसके माता-पिता ने तुरंत नेत्र रोग विशेषज्ञ को दिखाया। शिक्षक से मिलकर उसके आगे बिठाने की प्रार्थना की, दूसरी ओर अरुणा के अभिभावक उससे बोले-'हां, हां, क्यों दिखेगा ? होमवर्क जो करना पड़ेगा। और जब वह छमाही में सारे विषयों में फेल हो गई और शिक्षिका ने उन्हें बुलाकर उसकी आंखें कमजोर होने की बात कही तब उनकी आंखें खुलीं।

बलप्रयोग व जबरदस्ती ना करें।

प्राय: सामाजिक प्रतिष्ठा के चक्कर में अनेक माता-पिता अपने कमजोर बच्चों पर बहुत ज्यादती करते हैं। जब दूसरे बच्चों के माता-पिता दया करते हैं या ताना मारते हैं तो ये लोग अपने निरीह बच्चे पर सारी खीझ उतारते हैं। ऐसी-ऐसी बातें कह जाते हैं जो बच्चों के मन में गहरे व स्थायी घाव कर देते हैं-

तुम तो हमारी नाक कटाओ सबके सामने।

तुम्हें तो इसी दिन के लिये पैदा किया था।

घर के दूसरे कामों में उलझे हुये वे इस प्रकार के आदेश देते रहते हैं -

१. उधर जा। हमारा सर मत खा।

२. पड़ा रह चुपचाप।

बजाये इसके कि हम उनकी अक्षमताओं का कारण समझें उनका निवारण करें हम ही उनके सबसे बड़े निंदक बन जाते हैं।

अत्यधिक लाड़ व सुरक्षा ना दें।

आजकल एक या दो ही बच्चे घरों में होते हैं अत: आवश्यकता से अधिक लाड़ प्यार उन्हें दिया जाता है। उनकी कुर्सी, उनकी पुस्तकें, उनकी चादरें आदि निश्चित होती है। उन्हें कोई और छू भी नहीं सकता है। ऐसे बच्चे जब विद्यालय आते हैं तो कक्षा में भी ऐसा ही विशेषाधिकार चाहते हैं और ऐसा न होने पर कक्षा में अनुशासनहीनता के दृश्य आम हैं। इन्हें बांटना या मिलजुलकर रहना नहीं सिखाया गया होता है। हमारे समय में पुस्तक ना लाने वाले बच्चों को पास में बैठे बच्चे की किताब में से पढ़ने को कहा जाता था। आज बच्चे इस सहयोग को नकारते हैं।

शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों में ही नहीं, अनेक स्वस्थ बच्चों में भी आत्म विश्वास की बेहद कमी होती है। इस कमी को दूर करना माता-पिता का ही दायित्व है। उनकी बातों पर विश्वास कीजिये।

कक्षा में हर प्रकार के बच्चों के साथ मेल जोल रखने में भी ऐसे बच्चों को बड़ी कठिनाई आती है। अत्यधिक सुरक्षा देने से बच्चे अपनी देखभाल स्वयं करना सीखने में भी चूक जाते हैं। विशेष रूप से शारीरिक अक्षमता वाले बच्चों को उनकी कमियों के साथ साहस के साथ जीना और दूसरों से हमेशा दया की अपेक्षा किये बिना जीना सिखाना कठिन अवश्य है लेकिन बहुत ही आवश्यक । जैसे पोलियो ग्रस्त बच्चे, स्पास्टिक बच्चे जब चिकित्सकों के पास विशेष प्रशिक्षण के लिये जायें तो उन्हें प्रयास करने में हो रहे कष्ट को देखे देख के उनके सामने रोइये मत।

इससे उनमें आत्मदया पनपेगी जो उन्हें प्रयास करने से रोकेगी और विद्यालय में भी सबसे दया की अपेक्षा करने की प्रवृत्ति विकसित करेगी। आप यह सोचें कि आप भविष्य के लिये उन्हें सक्षम बना रही हैं।

विशेष कुशलताओं व योग्यताओं को विकसित करना

हम आये दिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं-

- अंधी युवती ने इंग्लिश चैनल पार की,
- लूले व्यक्ति ने पांव की अंगुलियों की सहायता से चित्रकारी की,
- या ऐसी ही दूसरी खबरें और हमारा मन कुलांचे मारने लगता है । हम अपने बच्चे को भी ऐसा ही कुछ अति विशेष करने के लिए और उसमें सबसे आगे रहने के लिये प्रोत्साहित करने लगते हैं बिना ये देखे या जाने कि उसे उस विशेष गतिविधि में रुचि है भी कि नहीं या वह उसे कर पाने में सक्षम होगा या होगा

भी कि नहीं। ऐसी महत्वाकांक्षाएं ना रखें। बच्चे में जो रुझान दिखे उसे पोषित विकसित करें। या, यदि उसकी इच्छा हो कि वह कोई बात सीखे तो उसे यथा संभव मदद दीजिये।

स्वावलंबन सिखाइये।

बेटा हो या बेटी-स्वावलंबन अवश्य सिखायें। कई छोटे-छोटे काम ऐसे हैं जो हम प्रेम के अतिरेक में करके दे देते हैं लेकिन फिर विद्यालय में सबके सामने बच्चे की किटी हो जाती है। जैसे-

१. टिफिन का डिब्बा जमाना या लगाना।
२. अपने जूतों के लेस बांधना।
३. बस्ते में किताब कॉपियों को सलीके से जमाना।
४. अपने कपड़ों के बटन व हुक आदि लगाना।
५. अपनी बात स्वयं कह पाना।
६. घर में भाई बहनो के छोटे-मोटे काम कराके देना जिससे कि वे कक्षा में सहपाठियों की सहायता कर सकें।

सहज रहें व सहज रहने दें, डरों का मजाक ना बनायें।

बच्चों को उनकी उम्र के हिसाब से सहज रहने दें। जल्दी बड़ा बनाने के चक्कर में ना रहें। शिष्टाचार या दिखावे के लिये उन्हें समय से पहले वयस्कों जैसा बोलने या व्यवहार करने के लिए प्रशिक्षित ना करें।

उनके लिए बहुत सारी छोटी-छोटी बातें जीवन-मरण का प्रश्न होती हैं जो आपको बड़ी मूर्खतापूर्ण व बेकार लग सकती है। ऐसी बातों पर ध्यान दें वरना कुछ समय बाद वे आपको हर बात बताना व आपसे हर सवाल पूछना बंद कर देंगे। वे अपनी समस्याओं को लेकर घुटते रहेंगे और आपको उसके विद्यालय से बुलावे आते रहेंगे और आपको पता चलेगा कि उसे परीक्षा के लिये

हर बच्चा हर काम में निश्णात नहीं होता और बहुत छोटे बच्चे तो लगभग हर काम में लगती करते हैं, सारे कामो में अकुशल ही होते हैं। उन्हें सदा टोकते या डांटते ही ना रहें। इससे वे कुंठित, उग्र या आक्रामक हो जाते हैं। यह स्वभाव वे विद्यालय में ले जाते हैं और यदि शिक्षिका भी ऐसी ही हुईं तो उसे जीवन ही अंधकारमय लगने लगता है, जहां उसे प्यार करने वाला कोई भी नहीं है।

कॉपी या कलम चाहिये थी और आपके डर के मारे उसने बताया ही नहीं। इसलिये ऐसी बातों पर भी ध्यान दीजिये कि-

१. शाम हो गयी, पापा मेरी कॉपी अभी तक नहीं लाये।

आप जिस काम को चुटकियों में कर सके हैं, उसी को करने में उसे तो एक घंटा या उससे अधिक भी लग सकता है।

२. चुडैल के पांव के पंजे पीछे की ओर क्यों होते हैं ?

यह सवाल उसे डरा के रात भर जगा सकता है। ऐसी जानकारियों वाली किताब देने के पहले आपने सोचा था क्या कि ऐसी बातें पढ़ने के बाद बच्चे के मन में कितने प्रकार के भय या सवाल आ सकते हैं जिनका समाधान आपको करना होगा ?

३. इसी प्रकार टी.वी. एवं पिक्चरों में देखी गयी अनेक बातों से उनके मनों में तरह-तरह की शंकाओं कुशंकाओं का डेरा रहता है। अगर वे नहीं बता रहे हैं तो उनके हाव भाव व आंखों के भाव से देखकर आपको उनके डर दूर करने चाहिये।

धुतकारिये नहीं, प्रशंसा कीजिये।

हर बच्चा हर काम में निश्णात नहीं होता और बहुत छोटे बच्चे तो लगभग हर काम में लगती करते हैं, सारे कामो में अकुशल ही होते हैं। उन्हें सदा टोकते या डांटते ही ना रहें। इससे वे कुंठित, उग्र या आक्रामक हो जाते हैं। यह स्वभाव वे विद्यालय में ले जाते हैं और यदि शिक्षिका भी ऐसी ही हुईं तो उसे जीवन ही अंधकारमय लगने लगता है, जहां उसे प्यार करने वाला कोई भी नहीं है। यह स्थिति उसे अवसाद से भर सकती है, उसके व्यवहार को प्रभावित कर सकती है एवं उसके पढ़ने लिखने की सारी प्रक्रिया को बाधित कर सकती है।

हर काम में उसके प्रयास की प्रशंसा करने में कोई बुराई नहीं है। मुझे इस तर्क में कोई दम नहीं दिखायी देता कि बच्चों की प्रशंसा करने से वे बिगड़ जाते हैं। इसके विपरीत मैंने यह पाया है कि इससे बढ़कर कोई उत्प्रेरक नहीं होता। शाबाश। बढ़िया। वाह। ये शब्द तो संजीवन मंत्र हैं बच्चों के लिये। साथ में यदि आप उन्हें गले से भी लगा लें या गोद में उठा लें तो क्या बात है। जरा ऐसे में उनके चेहरे पर छा जाने वाले भावों पर गौर तो करें।

बच्चे का जीवन तो माता-पिता के इर्द गिर्द ही घूमता है। उनकी प्रसन्नता अप्रसन्नता के साथ उनका सूरज उगता डूबता है। वे आपके बताये कामों को अति तल्लीनता से करते ही इसलिये हैं कि आपके प्यार के भूखे होते हैं।

अपने दांपत्य कलह, आर्थिक तंगी, व्यसन आदि का प्रभाव बच्चों पर जितना कम पड़ने दें उतना ही उनके लिये बेहतर है। जब वे कुछ समझदार हो जायें, आपकी

समस्याएं समझने जैसे हो जायें तो उनसे बात की जा सकती है।

तुलना ना करें

ये तो बहुत ही कम माता-पिता को समझ में आती है कि अपने बच्चों की आपस में तुलना करना व एक को कम व दूसरे को अधिक बताना उनके मनोवैज्ञानिक विकास में कितनी बाधक होती है, इसके साथ लिंग विषमता की भी भावना जुड़ी हो तो तुलना और भी घातक होती है। बच्चे में कुंठा अवसाद व निष्क्रियता तो उपजती ही है, वह तुलना करने वाले और जिससे तुलना की जा रही है- उन दोनों से मन ही मन घृणा करने लगता है।

बच्चे माता-पिता से प्रशंसा सुनने के लिये लालायित रहते हैं। उनसे यह अपेक्षा करना कि वे बड़ों के मान-अपमान के कारणों को समझकर ही हरदम व्यवहार करेंगे-ठीक नहीं है। इससे पहले बड़ों को बच्चों की भावनाओं का सम्मान करना सीखना होगा। प्राय: हम बड़े अपने बच्चों की निंदा उनकी उपस्थिति में यूं करते हैं, जैसे कि वे वहां हैं ही नहीं। हम उन्हें सबके सामने डांट भी देते हैं, जैसे कि उनका कोई आत्म सम्मान ही नहीं।

ऐसे में सबसे पहला कदम ये हो कि हम उनकी प्रशंसा करें, उनका हौसला बढ़ाएं, कोई उनकी निंदा करे तो हम अपने बच्चों का पक्ष सुने बिना कोई निर्णय ना करें। इन बातों से बच्चे आपका विश्वास करने लगेंगे एवं विद्यालय में कोई समस्या होने पर घर आ कर आपको बतायेंगे।

अधिकांश बच्चे कम अंक आने पर या असफल हो जाने पर घरों में प्रगति पुस्तक इसलिये नहीं दिखाते कि उन्हें अब मार या डांट पड़ेगी या कक्षा के अच्छे पढ़ने वाले बच्चों से उनकी तुलना की जायेगी और उन्हें तानों का शिकार होना पड़ेगा।

उपसंहार

ईमानदारी से तो यह विषय 'हरि अनंत, हरि कथा अनंता' के तर्ज पर आगे बढ़ता जा सकता है। मैं यही विराम देते हुये यही सुझाव देना चाहती हूं कि शिक्षा के इस विशाल उपक्रम में अभिभावकों को उपयुक्त स्थान दिया जाये एवं उन्हें भी उनकी संतान की प्रगति की इस यात्रा में हर कदम साथ चलाया जाये। इस हेतु प्रशिक्षण दिया जाना अत्यावश्यक है।

एक बार दसवीं में पढ़ने वाले एक विद्यार्थी की मां ने आकर मुझसे कहा कि मैं उनके बेटे को समझाऊं कि जब शाम को उनकी सहेलियां उनके घर पर एकत्रित होती हैं तो उनका बेटा अपने कमरे में चुपचाप बैठे और पढ़े आखिर उसकी सुविधा की सारी सामग्री तो उन्होंने जुटा दी है।

जब मैंने पुत्र से बात की तो वह बोला कि क्या उसकी मां को ठहाके लगाने चाहिये या उनकी सहेलियों को जोर-जोर से बातें करते रहना चाहिये। जबकि बीच में एक पतली सी दीवार ही है और उसे टी.वी. पे चल रह पूरा कार्यक्रम सुनायी दे रहा हो ?

ये एक उदाहरण हैं- इस प्रकार की अनेक बातें और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बातें और समस्याएं सामने आयेंगी और तभी सुलझेंगी जब माता-पिता एवं शिक्षिकों में भरपूर संवाद हो। ❑

६२-ए, गोपुर कॉलोनी, अन्नपूर्णा मार्ग, इंदौर, मध्यप्रदेश-४५२००९

कृपया अनौपचारिका से दोस्ती करें

❑

मैत्री समुदाय

यह समुदाय अनौपचारिका के मित्रों का समुदाय है। ऐसे मित्रों का जो इसे स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। उनका जो इसे पांवों पर खड़ा करना चाहते हैं। उनका जो इस पत्रिका को सामाजिक एवं सामुदायिक सहयोग से संपन्न होने वाला सफल आयोजन बनाना चाहते हैं। ऐसे प्रेमी मित्रों का एक विशद समुदाय बनाना हमारा सपना है। क्या आप इस मैत्री परिवार के सदस्य हैं ? यदि नहीं हैं तो कृपया शीघ्र बनिए। हमारे सपने को साकार करने में सहयोग दीजिए। चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट से रुपये एक हजार पांच सौ अथवा उससे अधिक श्रद्धानुसार शीघ्र भिजवाइए। ड्राफ्ट या चैक राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर अथवा अंग्रेजी में Rajasthan Adult Education Association के नाम हो। हमारा पता है -

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४

हम अनौपचारिका के हर पाठक एवं हर सहयोगी संस्था से अपील करते हैं कि मैत्री-समुदाय की सदस्यता शीघ्र ग्रहण करें। सादर। ❑ **संपादक**

संवाद
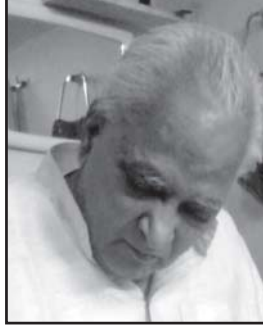
पंक्ति पंक्ति में नव-चिंतन

❑

शिवरतन थानवी

अनौपचारिका के अप्रेल, २०१२ के अंक में आपका संपादकीय पढ़ा। बहुत अच्छा लगा। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की जड़ता तोड़ने को किया गया यह गहन चिंतन पाठकों को जरूर पसंद आयेगा। सोचने को एक नयी दिशा मिलती है इस संपादकीय से, एक नयी खिड़की खुलती है ताजा हवा के लिये। इस संपादकीय की पंक्ति-पंक्ति में नवचिंतन है।

इस संपादकीय को पढ़ने वाले हर अध्यापक-प्रधानाध्यापक के मन में यही आयेगा कि न पंक्ति रखो और न विद्यार्थियों को खड़ा रखो प्रार्थना सभा में। वे अब यही सोचेंगे कि जहां फर्श बैठने योग्य न हो कम से कम वहां तो दरियां बिछाकर बच्चों को बिठाओ, अन्यथा फर्श पर ही बिठा दो, लेकिन पंक्तिबद्धता की शर्त मत रखो। जिसको जहां बैठने की इच्छा हो वहीं बैठने को पूर्ण स्वतंत्रता दो।

घेरे वाली तात्विक व्याख्या भी बहुत ही सुंदर है, अर्थगर्भित है, किन्तु यह छोटे समूहों में ही संभव है। कभी किसी कक्षा को बाहर मैदान में घास पर या रेत में बिठाकर किसी विषय पर चर्चा करनी हो तो वहां भी घेरा बना कर बैठना उचित व संभव हो सकता है। बड़ी सभाओं पर घेरे का प्रस्ताव लागू नहीं होगा। वहां तो यादृच्छिक स्वेच्छानुसार सहज रूप में बैठना ही संभव हो सकता है।

एक और तात्विक दृष्टि भी यहां विचारणीय है। क्या घेरे पर अधिक बल देना आरोपित व्यवस्था नहीं होगी ? इस आग्रह की भी अति न हो यह हमें ध्यान रखना होगा। अति निश्चित ही होगी जब संख्या अधिक हो। संपादक जी इस दृष्टि से भी पूरे सावधान हैं। तभी तो वे पंक्तिबद्धता की अनिवार्यता के भी उदाहरण देना नहीं भूले हैं। पक्षी हो चाहे मनुष्य, जहां परिस्थिति मांगे वहां पंक्ति में उड़ना या खड़े होना भी जरूरी है। टिकट खिड़की, दूकान पर, अस्पताल में, आदि उन जगहों पर जहां दूसरों का हक न मारने का, सब की सुविधा-असुविधा का और अपनी बारी का सवाल हो वहां पंक्ति भी जरूरी है। यह अनुशासन आवश्यक है, आरोपित नहीं। विद्यालयों की सभाओं में यह आवश्यक नहीं, आरोपित है। हमने कई कारणों के प्रभाव में इसे आवश्यक बना दिया है। उन कारणों को अब हम दूर रखें और विद्यार्थी समाज के संभागीत्व को सहज बना दें। उन्हें पंक्तियों में खड़े रहने को मजबूर न करें।

मूल बात यही है। पंक्तिबद्धता की प्रथा, प्रार्थना-सभाओं में, सामुदायिक विचार-सभाओं में, या उत्सव-समारोह में, तो सामान्यतया बंद कर देनी ही उचित होगी।❑

मोची स्ट्रीट,
फलोदी-३४२३०१
(जोधपुर)

शिक्षकों एवं लेखकों से अपील

❑

{शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे हर नव-प्रयोग को हम सविस्तार अनौपचारिका में प्रकाशित करना चाहते हैं। शिक्षकों और शिक्षाकर्मियों से अनुरोध है कि वे अपने प्रयोगों अथवा नये प्रयासों के अनुभव लिखकर भिजवायें। हमें अच्छे लेखों व शिक्षा की नयी किताबों पर टिप्पणियों की भी प्रतीक्षा रहती है। पाठक अपनी रचनाएं भिजवाकर अनुग्रहीत करें। रचना के साथ रचना संबंधी फोटो तथा स्वयं का फोटो भी अपने संक्षिप्त परिचय के साथ अवश्य भिजवायें। ❑ सं.
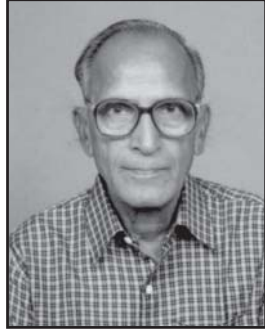
शिक्षा का सच

❑
आर.सी. भंडारी

अनौपचारिका के दिसम्बर, २०११ के अंक के संपादकीय लेख में एक प्रश्न उठाया गया है 'शिक्षा का सच क्या है ?' प्रश्न के उत्तर के संबंध में वहां विभिन्न पहलुओं पर विवेचना की गयी। संपादकजी के विचार से मैं भी सहमत हूं कि प्रश्न का उत्तर ढूंढ पाना आसान नहीं लगता। वे स्वयं एक लम्बे अर्से से शिक्षा से जुड़े रहने पर भी इस प्रश्न के उत्तर तक नहीं पहुंच सके । ठीक ही लिखा है कि उनकी स्थिति पानी में रहने वाली मछली का प्यासी रहना जैसी ही है। शिक्षा से जुड़े हुए कई विद्वतजनों की भी यही मनोदशा रही होगी। मेरा किसी के प्रति कोई आक्षेप नहीं हैं

प्रश्न के मूल में दो शब्द हैं शिक्षा और सच। दोनों शब्द, यदि बारीकी से देखा जाये तो स्वयं में इतने व्यापक और विशाल है कि सामान्य व्यक्ति उसमें गोता लगावे तो भी तह तक पहुंच पाना उसके लिए मुश्किल ही रहेगा। शिक्षा का सच जानना तो ठीक वैसा ही हुआ जैसे किसी वृक्ष से पूछा जाये कि उसका अस्तित्व क्या है ? उसका सच क्या है ? उत्तर में वृक्ष तो यही कहेगा कि -मेरा अस्तित्व तो मेरे बीज में समेटा हुआ है मेरा सच तो बीज में छिपा है। यही स्थिति शिक्षा और सच की है यानि शिक्षा का उद्‌गम स्वयं सत्य में है। सच से ही शिक्षा की वैतरणी निकलती है जिसकी विभिन्न धाराओं में मनुष्य का जीवन प्रवाहित रहता है। शिक्षा तो साधना है, तपस्या है, उन मानवीय मूल्यों का भंडार है जो मनुष्य को मानव बनाते हैं। शिक्षा मनुष्य जीवन में सतत रूप में आती है और जो सतत है उसे पकड़ पाना कठिन होता है । उसे जानना, परिभाषित करना साधारणतया संभव नहीं हो सकता जैसे किसी नदी के बहते पानी को एक स्थान पर स्थित नहीं किया जा सकता।

शिक्षा वह उपयुक्त होती है जिससे मनुष्य मानवीय मूल्यों को समझ सके, अपने जीवन में उतार सके और उनका उपयोग व्यवहार में कर सके। क्योंकि मानव मूल्यों की पगडंडी पर चलते हुए ही मनुष्य का जीवन परिष्कृत होता है । व्यक्तित्व में निखार आता है। प्रतिभा उजागर होने लगती है। और इन्हीं के सहारे पगडंडी पर चलते शिक्षा के सच तक पहुंच पाना संभव हो सकता है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि जो शिक्षा चरित्र का निर्माण नहीं कर सके वह बेकार है। जो शिक्षा मनुष्य को नैतिकता का पाठ न पढ़ा सके, उसमें करुणा, प्रेम, सद्‌भावना, विनयशीलता, सहनशीलता आदि मानव मूल्यों के भाव पैदा न कर सके उसे शिक्षा नहीं कहा जा सकता। गांधीजी की सत्य और अहिंसा की साधना को सारे विश्व ने सराहा ही है।

मौटे रूप में कहा जाये तो सच अनेकांती है । सापेक्षता के साथ चलता है। एकांकी सच तो केवल परम सच ही होता है जिस तक महावीर, गौतम, महर्षी रमण, स्वामी विवेकानन्द आदि जैसे अति विशिष्ट और बिरले ही पहुंच सके होंगे। शिक्षा का बीज सच में है अतएव सच को जानने, समझने के लिए भी साधना, त्याग, तपस्या की आवश्यकता है। मानव को अन्तर्मुखी होना पड़ेगा । जो स्वयं को पहचान सकेगा वह सच को भी जान सकेगा। सच को जान लेने की महान क्षमता ही, मेरे विचार से, शिक्षा है। सच को किसी तर्क की नींव पर खड़ा नहीं किया जा सकता। उसके लिए प्रयोगशाला में कोई प्रयोग की आवश्यता नहीं होती है और न उसे कोई सैद्धांतिक गणितीय समीकरणों से व्यक्त किया जा सकता है।

बोलचाल की भाषा वाली शिक्षा बहुआयामी है। मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की वास्तविकताओं से रूबरू कराने का साधन है। शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा उसी बहुआयामी रूप का एक भाग है। शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा तथा उससे संबंधित विभिन्न पहलुओं का संपादकीय में वर्णन किया गया है। आज की यह शिक्षा बाजारू हो गयी है। क्रय-विक्रय की वस्तु बनकर रह गयी है। मांग आपूर्ति के सिद्धान्त पर पल रही है। मेरे विचार से क्लास रूम में दी जाने वाली शिक्षा के सच का उस शिक्षा से कोई सरोकार हो ही नहीं सकता जिसके सच को ढूंढने का प्रयास किया जा रहा है। ❑

६३, जय जवान कॉलोनी,
स्कीम प्रथम, जयपुर-३०२०१८

कभी-कभी सोचता हूं, शिक्षित हो कर मैं एक तरह से घाटे में रहा । दरअसल मैंने अपनी जगह से बाहर निर्जन स्थलों या पर्वतों में शिक्षा नहीं पायी। यह कुछ ऐसी बात हैं जिस पर पश्चाताप का एक शब्द भी मैं न कहता । मेरे पिछले अध्यापकों ने यह सब नहीं समझा, पर मैं चाहता हूं कि यह पढ़ाई कहीं कन्दराओं, गुफाओं और निर्जन खण्डहरों में हुई होती, जहां मेरे दोनों तरफ़ पत्थर होते । भले ही इस तरह की पढ़ाई में मेरे गुण उभर कर न आते लेकिन प्रकृति की शक्ति से ये गुण बढ़कर बहुत बड़े हो जाते ।

पुछल्ला

यह सब सोचकर ही मैं कहता हूं कि शिक्षित हो कर मैं कई दृष्टियों से घाटे में रहा । शिक्षित होकर पछताने की बात बहुत लोगों के साथ होगी। माँ-बाप, कितने ही सगे -सम्बन्धी, घर आने-जाने वाले लोग, अनेक लेखक और खासकर घर का वह खानसामा, जो एक वर्ष तक मुझे स्कूल लाता, ले जाता रहा और फिर अध्यापकों की पूरी क़तार - जो धीरे-धीरे टहलती हुई हमारी क्लास में चली आती थी- सब मुझे याद हैं । यह सारी शिक्षा समाज पर एक छुरे जैसी लगती है। कभी यह छुरा आगे तो कभी पीछे नज़र आने लगता है। ❑

फ्रैंज़ क़ाफ़्क़ा

बीकानेर से निकली

कबीर यात्रा

❑

बीकानेर के नौजवान साथी गोपाल सिंह और उसके अन्य मित्रों की पहल से एवं भारत की कई संस्थाओं के सहयोग से कबीर यात्रा का आयोजन किया गया। इस यात्रा में कबीर को गाने वाले लोग सम्मिलित हुए और उनके गायन का रसास्वादन करने वाले सैकड़ों लोग भी आ जुटे।

कबीर को जानने और समझने की कोशिश करने वाले कई देशी विदेशी विद्धतजन भी वहां आये और सबने परस्पर विचार–विमर्श के दौरान फिर से कबीर को पा लेने की कोशिश की। यह एक अलग बात है कि कबीर की थाह ले लेना अब तक किसी के लिये सम्भव न हुआ है और न होगा। उसके लिये जरूरी है वैसा ही त्याग, वैसी ही निष्ठा और वैसा ही प्रेम। ❑
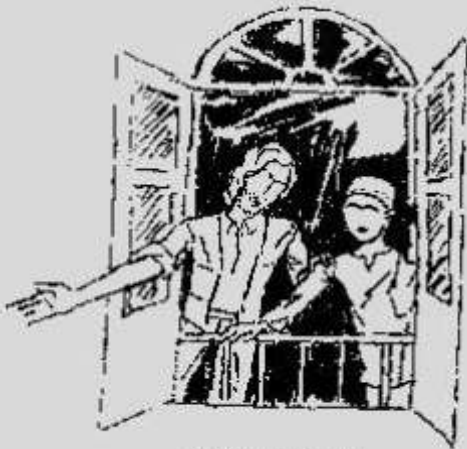
संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक रमेश थानवी के लिए कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित

रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका	RNI 43602/77

विश्व प्रसिद्ध कलाकार मकबूल फ़िदा हुसैन अपने बचपन से कहते हैं –

ऐ मेरे दोस्त, मेरे बचपन तुझे अपने दादाजी के दालान की वो खिड़की याद है क्या जहां मैं और तू दोनों बाहर की दुनिया की छोटी–छोटी बातों को देखते निहारते थे। हमने देखा तो खूब मगर जाना कुछ नहीं दोस्त। ❑